Chapter-4

:: अध्याय : चार ::

:: ओशो रजनीश और हिन्दी संत-काव्य परंपरा ::

:: अध्याय : चार ::

:: ओशो रजनीश और हिन्दी सन्त काव्य-परंपरा ::

प्रास्ताविक :

यह अनेक बार कहा गया है कि ओशो का साहित्य तो एक समुद्र के मानिंद है, आकाश के मानिंद है, दोनों की गहराई और अनंतता को नापना आसान नहीं है। उनमें कितने मोती हैं, कितने तारे हैं यह कहना भी आसान नहीं है। परंतु ओशो की चर्चा जब हिन्दी साहित्य के संदर्भ में करते हैं, तब हमारा ध्यान बरबस ओशो के उन व्याख्यानों की ओर जाता है, जो उन्होंने कबीर, मलूक, दादू, रैदास, रज्जब, दयाबाई, सहजो प्रभृति के संदर्भ में दिए हैं। ओशो को हिन्दी साहित्य में स्थान दिलाने के लिए इतना साहित्य भी पर्याप्त है। भविष्य में ओशो के केवल इस पक्ष

को लेकर भी कोई अनुसंधित्सु चाहे तो शोध-कार्य कर सकता है ।

<u>कबीर :</u>

हिन्दी के मध्यकालीन सन्त कवियों में कबीर ही एक ऐसे कवि हैं जिनका जिक्र ओशो बारबार करते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर उनके प्रिय कवि रहे होंगे । कृष्ण , बुद्ध , महावीर के पश्चात् महात्मा कबीर ही आते हैं जिन्होंने हजारों वर्षों की दीर्घ परंपरा में कुछ क्रांतिकारी बातें जोड़ी हैं । जिस सामाजिक न्याय की बात इधर कुछ न्यस्त हितों को ध्यान में लेकर कही जा रही है , उसे बिना किसी स्वार्थ के साहस के साथ कहने वालों में कबीर ही तो थे । अमीर खुसरो के पश्चात् हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात छेड़ने वाले कबीर ही तो थे । वेदान्त के एकेश्वरवाद जिस पर महर्षि दयानंद सरस्वती भी विशेष तवज्जो देते थे , उसे साधारण सहज भाषा में कहने वाले कबीर ही तो थे । धर्म के बाह्य कर्मकाण्डों जिसे लेकर कुछ धर्मान्ध लोग मदान्धता की [illegible] सीमा तक झूम रहे थे , उसका विरोध करनेवाले कबीर ही तो थे । धर्म की जड़वादिता को लेकर हिन्दू-मुसलमान दोनों को समान रूप से फटकारने वाले पहले सच्चे अर्थों में धर्म-निरपेक्ष कवि कबीर ही तो थे । कर्म और धर्म के सुंदर सायुज्य को सार्थक करने वाले कबीर ही तो थे । केवल कोरी बातें नहीं , जीवन में श्रम भी होना चाहिए , कहकर गांधी से पहले चरखा चलानेवाले कबीर ही तो थे । ऐसा कवि कालजयी होता है । क्योंकि वह "रूटलेस" नहीं होता । कबीर की जड़ें बहुत गहरे भारतीय समाज में , भारत के बृहद् समाज में , असली भारत में जमी हुई हैं । अतः कबीर को उखाड़ना मुश्किल है । कबीर कभी प्रासंगिक नहीं हो सकते । क्योंकि कबीर जीवन की बात

करते हैं और जीवन हमेशा रहेगा । इसलिए मेरे निर्देशक महोदय ने कबीर पर जो लेख लिखा है , उसका शीर्षक बांधा है : "कबीरः सर्वकालीन प्रासंगिकता का कवि " ।[1] आज हमारे देश में जो स्थिति प्रवर्तमान है , जो समस्याएं उपस्थित हैं , उनमें से बहुत-सी समस्याओं का समाधान हमें कबीर के यहां मिलता है ।

मंगेश पाडगांवकर ने ओशो और कबीर की तुलना करते हुए उनके बीच जो कतिपय समान आशय-सूत्र हैं उनका उल्लेख करते हैं : "पहला आशय-सूत्र : सामान्य से सामान्य आदमी भी परम ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है । दूसरा : ज्ञान की गहरी प्यास होनी जरूरी है । वह प्यास कुतूहल या फैशन की भांति न हो । तीसरा : निर्भय मन स्व-अनुभूति में भरोसा करता है । और यही वास्तविक विद्रोह है । चौथा : हम स्वयं ही स्वयं को बांधते हैं । बंधन बाहर नहीं होता । भागो नहीं , जागो । पांच : धर्म तुम्हारे अंतरतम है । संगठित , प्रतिस्पर्द्धायुक्त झुंडवादी संप्रदाय धर्म नहीं है । ॥ छह : साक्षित्व की अभिव्यक्ति सहज योग है । वह मन के लालच से , महत्वाकांक्षा से पैदा नहीं होता । " [2]

अतः हम कह सकते हैं कि कबीर सामान्य आदमी के लिए भी आशा की किरण लेकर आते हैं । वे कहते हैं कि सामान्य मनुष्य भी परम ज्ञान को प्राप्त कर सकता है । कबीर ऐसा कहते हैं क्योंकि वे स्वयं सामान्यातिसामान्य आदमी रहे हैं । कबीर की जाति का कोई ठिकाना नहीं था । जिन्होंने पाला-पोसा वे निम्न जाति के थे । जाति के बाद दूसरी सामाजिक सत्ता होती है धन । तो धन भी कबीर के पास नहीं था , क्योंकि वे एक सामान्य गरीब जुलाहे थे । "इसलिए ओशो कहते हैं कि कबीर साधारण आदमी के लिए बहुत बड़ी आशा की किरण है । जिनके जीवन में ये सारे सत्ता-केन्द्र नहीं है वे साधारण लोग

भी परम ज्ञान की अनुभूति कर सकते हैं । " [3] अभिप्राय यह कि उक्त दोनों दृष्टियों से कबीर की स्थिति तो बिलकुल निम्न प्रकार की है और यदि कबीर परम ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, तो बाकी तमाम लोग भी प्राप्त कर सकते हैं ।

ओशो कबीर की प्रशंसा करते हैं, एक और कारण से । वे कहते हैं : "बुद्ध, महावीर, कृष्ण, इनसे भी कबीर महान हैं क्योंकि ये राजा के बेटे थे । ऐश्वर्य इन्हें जन्मजात मिला हुआ था । बड़े से बड़े शिक्षक और गुरु उन्हें शिक्षा देने के लिए मौजूद थे । कबीर जैसा आदमी त्याग करे भी तो किस चीज का ? छप्पन भोग का भोजन करने के बाद उससे ऊबकर रूखी-सूखी साग-रोटी खाने का मन होता है । रूखी रोटी ही जिसे नसीब हुई हो वह उसे छोड़ने की आकांक्षा कैसे करे ? इसलिए कबीर की महानता और उभरकर सामने आती है । ... बुद्ध सम्राट हैं, इसलिए सम्राट अगर धन से छूट जाए, आश्चर्य नहीं । बुद्ध को जो ज्ञान अनुभव के बाद हुआ वह कबीर को अनुभव के बिना कैसे हुआ होगा ? ** अतः जीवन की बड़ी गहरी समझ कबीर के पास होनी चाहिए । " [4]

कबीर और ओशो की समानता पर विचार करते हुए मनीषा पाड-गांवकर कहते हैं : "कबीर और ओशो के आध्यात्मिक स्वभाव में एक समानता है, वह है असाधारण विद्रोहिता और निर्भयता । कबीर किसी भी व्यक्ति को डांट लगाने से पीछे नहीं हटते । ओशो भी अपने ढंग से निरंतर यही करते आए हैं । ओशो और कबीर दोनों खालिस विद्रोही व्यक्तित्व हैं । विद्रोह का मतलब है वे अपने अनुभव के प्रति प्रामाणिक हैं । सामान्यतया विद्रोह का अर्थ हम यही करते हैं कि खुद की ओर ध्यान आकर्षित करने का एक उपाय । वह अहंकार की एक करतूत होती है । लेकिन असली विद्रोह है स्वयं के अनुभव के प्रति प्रामाणिकता, और जो इस अनुभव के विपरीत है उसका इन्कार । यह विद्रोही प्रवृत्ति

ओशो और कबीर में इतनी पाई जाती है मानो वे दोनों जुड़वां भाई हों । " 5

कबीर के विद्रोह का पता तो हमें उनके साहित्य से होता है । कबीर सच्चे अर्थों में बिन-साम्प्रदायिक हैं । आज जब हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर प्रयाण कर रहे हैं, और कमसे कम xxxx वैचारिक तल पर जात-पांत का विरोध करते हैं, तब भी बहुत से लोग जो हिन्दु हैं मुसलमानों के विषय में मौन रहते हैं और मुसलमान हिन्दुओं के विषय में । अपने-अपने धर्म या वर्ग के लोगों को फटकार कर वे अपनी प्रगतिशीलता और अग्रगामी चिंतन का केतु फहरा रहे हैं । कबीर का समय तो इस लिहाज से बहुत ही खराब था । जातिवादी-संप्रदायवादी चिंतन अपनी चरम सीमा पर था । पर उस समय भी कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों को उनकी गलत बातों के लिए ललकारते और फटकारते हैं :

एक निरंजन अल्लह मेरा, हिन्दू तुरक तहूं नहीं मेरा
राखूं व्रत ना मोहरम जाना, तिस ही सुमिरूं जो रहै निधाना
पूजा करूं न निमाज गुजारूं, एक निराकार हृदय नमस्कारूं
ना हज जाऊं न तीरथ पूजा, एक पिछाण्या तो का दूजा
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर के शब्दों में जो आग है वही ओशो के शब्दों में है । जो उन्हें स्वीकार नहीं था उसे उन्होंने सामाजिक दबाव के कारण या राजकीय दबाव के कारण कभी कूबूल नहीं किया ।

कबीर और ओशो दोनों कहते हैं : हमने खुद अपने आपको बांध रखा है । कबीर एक स्थान पर कहते हैं :

कहहि कबीर ललनि के सुकना
तोहि कौन पकरे ? अपन पौ आपुही बिसरौ

हम स्वयं अपने आपको भूल गए हैं । इसमें कबीर एक बढ़िया उदाहरण देते हैं । तोतों को पकड़ने वाला वृक्ष में बांस की एक नली फंसा देता है । तोता आकर उस नली पर बैठता है । उसके बैठते ही नली उलट जाती है । तोता मारे डर के उस नली को कस के पकड़ लेता है । उसे डर है कि नली के छोड़ते ही वह नीचे गिर जायेगा । पर भय के कारण वह भूल गया है कि वह नीचे कैसे गिर सकता है ? वह तो उड़ सकता है । हमारी गति भी ठीक उस तोते की तरह है । हम मन को कसकर पकड़े हुए हैं और स्वयं को भूल गए हैं । एक प्रकार की मूर्च्छना से ग्रसित हो गए हैं । ओशो और कबीर उस मूर्च्छा से जगाने के लिए झकझोरते हैं , फटकारते हैं , लट्ठमार भाषा का प्रयोग करते हैं , परंतु यह सब क्रोधवश नहीं , करुणा से होता है ।

ओशो और कबीर में एक और साम्य-सूत्र है । दोनों सच्चे धर्म की ओर इशारा करते हैं । दोनों स्पर्द्धात्मक झुण्डवादी संप्रदायों का विरोध करते हैं । धर्म के नाम पर लोगों का शोषण करना , उन्हें भटकाना , उन्हें बरगलाना , दो सम्प्रदायों को भड़का कर उन्हें आपस में लड़वाकर खून की होली खेलना , न कबीर को पसंद था न ओशो को । अतः कबीर स्थापित मठाधीशों पर करारी चोटें करते हैं :

> साधो देखो जग बौराना , सांची कहौ तो मारन धावै
> झूठे जग पतियाना
> हिन्दू कहत हैं राम हमारो मुसलमान रहमाना
> आपस में दोऊ लड़े मरत हैं , मरम कोई नहीं जाना [6]

तो ओशो भी कबीर जैसी ही तीव्रता से कहते हैं : " जब धर्म मर जाता है तब सम्प्रदाय पैदा होता है । जो सम्प्रदाय में अटके रहते

उन्हें धर्म की अनुभूति कभी नहीं हो सकती । संप्रदाय के मुर्दे से मुक्त हुए बगैर धर्म का अनुभव होना कतई संभव नहीं है । आदमी के मर जाने के बाद उसकी अर्थी के साथ हम जो करते हैं वही धर्म के मरने के बाद उसकी अर्थी के साथ करना चाहिए । " [7]

सहज योग के संदर्भ में भी ओशो और कबीर समीपस्थ हैं । कबीर कहते हैं — " साधो सहज समाधि भली " ।

कबीर की यह सहज समाधि ही ओशो के यहां सहज योग है । साक्षित्व की अभिव्यक्ति ध्यान का अपरिसीम विवेचन करने के बाद ओशो एक ही सूत्र पर स्थिर होते हैं : ध्यान है साक्षित्व । आसन लगाकर बैठने की जरूरत नहीं है , चलते-फिरते , काम करते हुए अगर भीतर एक जागरण हो तो वही ध्यान है । उसके बगैर आप एकाग्रता साधने का कितना ही प्रयास क्यों न करें , वह ध्यान नहीं है । [8]

आखिर कबीर हों या ओशो , ये दोनों , प्रत्येक मनुष्य के भीतर के अन्तर्स्थित स्वर को छूने का प्रयास करते हैं । " यह स्वर प्रत्येक व्यक्ति के अंतस में छिपा हुआ सृजनशील केन्द्र है । भीमसेन जोशी का गायन सुनकर हमारे भीतर कौन-सा स्वर बजता है ? रविशंकर का सितार हमारी वीणा पर कौन-सा तार छेड़ता है ? लौट आइए अपने आप पर । मैं अपनी ही कविता से इस विषय का समापन करना चाहूंगा —

हम ही अपनी धुन हैं , गाते रहो
हम ही बरसात हैं , नहाते रहो
कल-कल बहते झरने को
दिल खोलकर ताल दो
फूल आए जो चूमने छूने को
हलके से अपने गाल दो । " [9]

कबीर का एक पद है :

"माया महाठगिनी हम जानी ।
निरगुन फांस लिए कर डोलै , बोलै मधुर बानी ।।
केसव के कमला होइ बैठी , सिव के भवन भवानी ।।
पंडा के मूरत होई बैठी , तीरथ हु में पानी ।।
जोगि के जोगन होइ बैठी , राजा के घर रानी ।।
काहू के हीरा होइ बैठी , काहू के कौड़ी कानी ।।
भक्तन के भक्ति होइ बैठी , ब्रह्म के ब्रह्मानी ।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो , यह सब अकथ कहानी ।।

इस पद की बड़ी ही सुंदर , सटीक , सरल व्याख्या ओशो ने की है । पूरा एक 29-30 पृष्ठों का लेख इस पद को लेकर है ।[10] इतनी ~~विषद और~~ विशद और गंभीर , साथ ही सरल , व्याख्या शायद ही हिन्दी के किसी विद्वान ने की होगी । इसी पद की आलोचना करते हुए ~~अ~~ ओशो एक स्थान पर कहते हैं :

"इस भीतर के अंधेपन का नाम माया है । और यह माया अनेक रूप ले लेती है । इसके रूप का कोई अंत नहीं है । तुम जैसा चाहो , वैसा रूप ले लेती है , क्योंकि माया सपना है । वहां कोई पदार्थ तो नहीं है कि रूप देने में कोई कठिनाई हो । तो कबीर कहते हैं , भक्त के लिए मूर्ति ही माया हो जाए , वह उसीको सम्हाल-सम्हाल के फिरता है । एक घर में मैं पंजाब में मेहमान हुआ । सुबह स्नान करने के लिए निकला तो जिस कमरे गुजरा , वहां देखा कि गुरुग्रन्थ साहब रखा है, नानक की वाणी रखी है , और एक लोटा रखा पास में और एक दतवन रखी है । मैं जरा हैरान हुआ कि दतवन और लोटा यहां किसलिए रखा है । तो उन्होंने कहा कि गुरुग्रन्थ साहब के लिए । सुबह दतवन करने के लिए किताब रखी है वहां , मूर्ति भी नहीं है । गुरुग्रन्थ साहब के लिए दतवन रखी है । मूर्ति भी हो तो भी

थोड़ा समझ में आता है । ऐसे तो यह भी मूढ़तापूर्ण है , क्योंकि तुम्हारी ही बनाई हुई मूर्ति और तुम भलीभांति जानते हो , बाजार से खरीद लाये हो , और अब दतवन और लोटा रखा हुआ है । लेकिन किताब के सामने तो हद हो गई । लेकिन हो गई है हद इसलिए कि किताब का नाम है "गुरुग्रन्थ साहब " । और किताब में एक व्यक्तित्व डाल दिया -- "साहब " । तो भोजन भी दिया जायेगा , गुरुग्रन्थ साहब को ; सुलाया भी जायेगा , उठाया भी जायेगा । .... कबीर कहते हैं , "भक्तन के भक्ति होइ बैठी , जोगी के जोगन होइ बैठी , राजा के घर रानी । पंडा के मूरत होई बैठी , तीरथ हू में पानी । " सारे संसार में उसने बहुत रूप लिये हैं । प्रश्न यह है कि जहां भी तुम्हारी आसक्ति हो , जहां भी तुम्हारा मोह हो , जहां भी तुम्हारा अंधापन लग जाए , राग जुड़ जाए , वहीं माया खड़ी हो जायेगी । अब किताब से राग लग गया तो किताब ही माया हो गई । मुझसे राग लग जाये , वही माया हो गई । तो फिर मेरे कारण तुम परेशान होने लगे । और जहां माया होगी , वहीं परेशानी शुरू हो जायेगी ।" "।।

दूसरा एक पद है कबीर का :

> "अपन पौ आपु ही बिसरो
> जैसे श्वान कांच मंदिर मह , भरमते भूंकि मरो ।।
> जौं केहरि बपु निरखि कूपजल , प्रतिमा देखि परो ।।
> वैसे ही गज फटिक सिला पर दसनन्हि आनि अरो ।।
> मरकट मूठि स्वाद नहिं बिहुरै , घर घर रटत फिरो ।।
> कहहिं कबीर ललनि के सुगना , तोहि कवने पकरो ।।

कबीर की भाषा जमीन की भाषा है । ठेठ हिन्दुस्तानी की भाषा है । कबीर की भाषा ग्रामीण है , जीवंत है , सरल है । इसलिए

उनके प्रतीक भी सीधे-सादे हैं । हिन्दुस्तान में जीसस के मुकाबले केवल कबीर हैं । महावीर , कृष्ण , बुद्ध , राम — सब परिष्कृत दुनिया के लोग हैं । बड़ी शुद्ध , सुसंस्कृत कुलीन परंपरा के लोग हैं । कबीर ठेठ ग्रामीण हैं । जीसस बढ़ई के लड़के थे , कबीर जुलाहे हैं । कबीर और जीसस की भाषा सीधी-सादी है ; अनुभव की भाषा है , शास्त्र की नहीं । "रीटन-लैंग्वेज" नहीं "स्पोकन-लैंग्वेज" है । ये सारे प्रतीक अनुभव की खराद पर चढ़कर आये हैं — "अपन पौ आप ही बिसरौ" —खुद ही खुद को भूल गये । " इसलिए कबीर कहते हैं , काहे की कुसलात ! हाथ दीया था , और कुएं में फिर गिर पड़े ! दीया दूसरों के लिए था । अपने लिए जिसके पास दीया है , वो तो बुद्ध हो जाता है । अपने लिए जिसके पास ज्ञान है , वो तो भीतर प्रकाशित हो जाता है । उसकी कुशलता का तो कोई अंत नहीं है । लेकिन दूसरों के लिए दीया हमारे पास है ; अपने लिए तो हम अंधे हैं । " 12

"मरकट मूठी स्वाद नहीं बिहुरै , घर-घर रटत फिरौ " — कबीर के प्रतीक बड़े सीधे-साफ हैं । बंदर किसी घड़े में हाथ डाल देता है । चने या कुछ भोजन की आशा में और फिर बड़ी मुट्ठी भर लेता है । हाथ घड़े में फंस जाता है , पर मुट्ठी नहीं खोलता । "यही तुम्हारी दशा है । बड़ी मुट्ठी बांध ली , मुट्ठी नहीं खोलते , और द्वार-द्वार सिर पटकते फिरते हैं : शांति चाहिए , आनंद चाहिए , जीवन चाहिए । और एक घड़े में फंसे हैं । उसकी वजह से बड़ी मुसीबत है । " 13 ऐसे ही हाथी स्फटिक की शिला में सिर मारकर अपने दांत तुड़वाता है , सिंह कुएं में अपनी छवि देखकर कूद पड़ता है । कारण एक ही है , खुद को न पहचानना । कितने सटीक उदाहरण , कितने सटीक प्रतीक और अपनी रोज-बरोज की भाषा में । यही कबीर का कमाल है । कबीर भाषा के वशवर्ती नहीं हैं , भाषा कबीर के पीछे-पीछे हाथ बांधकर चलती है । तभी तो उनकी भाषा

का डीक्टेटर कहा गया ।

कबीर का एक और पद देखिए :

"भक्ति का मारग झीना रे ।
नहिं अचाह नहिं चाहना , चरनन लौ लीना रे ।।
साधन के रसधार में रहै निसदिन भीना रे ।।
राग में श्रुत ऐसे बसै , जैसे जल मीना रे ।।
साईं सेवत में देइ सिर , कुछ विलंब न कीना रे ।। " [14]

इस पद की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं :

"कबीर जीवन भर कर्म से कभी अलग न हटे । कर्म को उन्होंने कभी छोड़ा नहीं । भक्त वे हैं । उनका पूरा जीवन कीर्तन की मस्ती से भरा हुआ जीवन है । सुबह से रात तक वे गाते ही रहते हैं । और वे गीत कुछ साधारण नहीं । वह गीत कंठ से नहीं गाया गया है । और उस गीत का जन्म बुद्धि और विचारों से नहीं हुआ है । वह गीत उनके प्राणों के प्राण से उठा है । उस गीत में कविता कम है ; छंदबद्ध वह नहीं है । उसमें बड़ी भूल-चूकें हैं । लेकिन उस गीत में हृदय है । और हृदय ने कब छंद माने हैं , कब नियम माने हैं । सब नियम तोड़कर हृदय बहता है । .... तो कबीर गाते रहे जीवन भर । ये सारे गीत उन्होंने बनाए नहीं , गाये हैं । एक तो कवि होता है , जो बनाता है , जो श्रम करता है , जो सजाता है , भाषा को बिठाता है , व्याकरण नियम छंद सबकी व्यवस्था करता है । और एक ऋषि है , जो सिर्फ गाता है । ऋषि भी कवि है , लेकिन कवि ऋषि नहीं है । ऋषि गाता है , लेकिन उसका गीत कोई बौद्धिक आयोजन , कोई व्यवस्था , भाषा , व्याकरण , छंद नहीं है । उसका गीत तो सिर्फ हृदय में आ गया पूर है । अपने भीतर नहीं रोक सकता , वह बाहर बहता है । " [15]

इस पद की व्याख्या करते हुए ओशो कबीर के संबंध में कहते हैं :

"मंजिल भीतर है , परमात्मा भीतर है ; खोजनेवाले के खोने की कमी है । ध्यान में तो बिलकुल अकेले हो । ज्ञान में बिलकुल अकेले हो । ज्ञान की विधि ध्यान है । भक्ति की विधि प्रेम है । कर्म की विधि सेवा है । क्राइस्ट सेवा को सारा साधन माने । इसलिए ईसाइयत में सेवा आराधना बन गई । बुद्ध , ध्यान को सारी साधना का केन्द्र बनाए । इसलिए बुद्ध-धर्म में सेवा , भक्ति दोनों खो गये , केवल ध्यान रह गया । कबीर तीनों हैं । ... इसलिए कहता हूं , कबीर तीर्थराज प्रयाग हैं , तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ हैं ; क्योंकि तीनों धाराएं उनमें आ जाती हैं , और मिल जाती हैं । उनसे बड़ी सिन्थीसिस , उनसे बड़ा समन्वय घटित नहीं हुआ है । इसलिए कबीर को समझना भी मुश्किल है । क्योंकि जहां तीन-तीन अनूठी धाराएं आ के गिरती हों वहां बड़ी असुविधा हो जायेगी ; तर्क काम न पड़ेगा । कभी कबीर यह कहते मालूम पड़ेंगे , कभी वह कहते हुए मालूम पड़ेंगे । कभी कहेंगे , कभी उसका विरोध करेंगे । क्योंकि जो कर्म के लिए सच है , वही भक्ति के लिए सच नहीं ; और जो भक्ति के लिए सच है , वह कर्म में बाधा बन जाता है । इसलिए कबीर जैसे व्यक्ति के पीछे , एक बड़ा रहस्य छूट जाता है , जिसको खोलने की चेष्टा चलती है सदियों तक , लेकिन खोला नहीं जा सकता । " [16]

कबीर को वैसे ज्ञानाश्रयी कहा गया है , परंतु कबीर-काव्य में प्रेम की बात बार-बार आती है , क्योंकि भक्ति की विधि प्रेम है और कबीर ज्ञान के साथ भक्ति की बात भी करते हैं । वस्तुतः प्रेम ही वह तत्व है जो हमें भक्ति की ओर ले जा सकता है । सूफी भी यही कहते हैं । मीरां भी यही कहती है । कबीर भी यही कहते हैं । ओशो उसके संबंध में कहते हैं : " प्रेम हम जानते हैं ,

भक्ति से हमारा कोई संबंध नहीं है । और प्रेम भी हम बहुत नहीं जानते हैं ; कभी कण , क्षण । कभी क्षण भर को ऐसा लगा है किसी के साथ कि हम खो गये । जहां भी खोने का अनुभव हो , समझना प्रेम । अगर खोने का अनुभव जीवन में कभी न हुआ हो , समझना कि प्रेम से अछूते रह गये । और जो प्रेम से अछूता रह गया , वह भक्ति को न समझ पायेगा । क्योंकि जो पास के सरोवर में ही स्नान करने न गया , उसकी यात्रा सागर तक कैसे हो सकेगी । जिसने कभी खिड़की से बाहर ही न झांका , वह आकाश के नीचे कैसे जा सकेगा । जिसने सामान्य प्रेम को न जाना , वह असामान्य भक्ति को कभी न जान सकेगा । .... तो तुम जिसे प्रेम कहते हो , वह प्रेम नहीं है । वह भी शोषण का एक ढंग है । वह भी हिंसा का एक मार्ग है । अगर तुम अपने प्रेमी पे कब्जा करना चाहते हो , तो तुमने प्रेम जाना ही नहीं । तुमने प्रेम को पहचाना ही नहीं । प्रेम कब्जा करना नहीं चाहता , कब्जा देना चाहता है । प्रेम मालिक नहीं होना चाहता , मालिक बनाना चाहता है । इसलिए तो कबीर बार-बार कहते हैं : ` कहे दास कबीर । ` वह जो <u>दास</u> शब्द है , समझ लेना । ... प्रेम अति विनम्र है । प्रेम आक्रमक नहीं है । प्रेम तो निमंत्रण है , आक्रमण नहीं । प्रेम तो बुलावा है । प्रेम तो अपने को मिटाने की तैयारी है । ... प्रेम में न कोई वकील साथ होगा , न कोई कानून की किताब होगी । प्रेम की दुनिया में अब तक कोई किताब प्रवेश नहीं कर पाई । और किसी वकील को वहां कोई जगह नहीं है । प्रेम में तुम निपट अकेले हो । अकेले होने से डर लगता है । और फिर प्रेम का मतलब ही मिटना है । और मिटने से डर लगता है , जैसे मृत्यु हो जायेगी । ... तीन चीजों से मैं अनुभव कर रहा हू कि लोग डरे हुए हैं । एक प्रेम ... और जो प्रेम से डरा है वह परमात्मा से डर गया । क्योंकि वह उसका आखिरी परिणाम है । दूसरा मृत्यु ... और जो मृत्यु से

डर गया, वह जीवन से डर गया । क्योंकि मृत्यु जीवन की अंतिम घटना है, शिखर है, निष्पत्ति है, सारे जीवन का निचोड़ है । और तीसरा ध्यान । क्योंकि ध्यान प्रेम और मृत्यु दोनों जैसा है । उसमें मरना भी होता है, और परमात्मा का पाना भी होता है । इसलिए सबसे ज्यादा खतरनाक ध्यान है । प्रेम से डरे कि परमात्मा का द्वार बन्द हुआ ।"[17]

कबीर का एक बहुत ही प्रसिद्ध पद है । यह पद मुझे भी बहुत प्रिय है :

"मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ।
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बारबार वाको क्यों खोले ।।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले ।।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले ।।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले ।।
तेरा साहब है घर माँहि, बाहर नैना क्यों खोले ।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गए तिल ओले ।।

इस पद की व्याख्या ओशो ने पूरे 26 पृष्ठों में की है । पृष्ठ तो दूसरों ने भरे । ओशो तो बोले थे । पर इतना बोले कि 26 पृष्ठों का एक अच्छा-खासा लेख हो गया, अध्याय हो गया ।

शराब का नशा मनुष्य को दो तरह से प्रभावित करता है । एक तो शराब पीने के बाद आदमी बड़बड़ाने लगता है । उसको हम कच्चा पियक्कड़ कह सकते हैं । पर एक होता है सच्चा पीने वाला । पीने के बाद वह मौन हो जाता है । शराब तो एक सामान्य प्रकार का नशा है । उससे भी बड़ा नशा होता है ज्ञान का । कहते हैं बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तब दो सप्ताह तक वे बिलकुल मौन रहे थे ।[18] और उससे भी बड़ा नशा होता है भगवद्-प्राप्ति का । आदमी का मन

जब उस नशे में मस्त हो उठेगा तब फिर वह क्यों बोलेगा ।

ओशो इस संदर्भ में कहते हैं : " जितने-जितने तुम स्वस्थ होते जाओगे उतना-उतना कहने को क्या बचेगा ? जब कोई परिपूर्ण स्वस्थ होता है — शरीर, मन, आत्मा, सब शांत हो जाते हैं — तब कहने को कुछ भी नहीं बचता — मन मस्त हुआ तब क्यों बोले ? बोलना दुख के जगत का अंग है । और इसलिए जब कोई आदमी विक्षिप्त हो जाता है, तो चौबीस घण्टे बोलता रहता है । सिर्फ विक्षिप्त बोलता है चौबीस घण्टे । रात में भी बड़बड़ाता है, दिन में भी बोलता रहता है । एक छोर विक्षिप्त का है, जब वो चौबीस घण्टे बोलता है ; दूसरा छोर विमुक्त का है, जब वह वो बिलकुल चुप हो जाता है । उसके घर में कोई भी नहीं होता, सन्नाटा होता है । उसके घर में कोई आवाज नहीं होती, कुछ कहने को नहीं होता, कोई शोर नहीं उठता, एक परम शून्यता की लयबद्धता होती है । " [19]

कहा गया है — "अधजल गगरी छलकत जाय" । हम सब जब तक अधूरे होते हैं, अपूर्ण होते हैं, तब तक वाणी के द्वारा छलकते रहते हैं ; पर जब शून्य में मिलकर शून्य हो जाते हैं, पूर्ण हो जाते हैं, तब मस्त हो जाते हैं और मस्त हो जाने पर क्या बोलना ? जिन्होंने नहीं पाया वे बड़बड़ाते हैं । यहां तक कि प्रेम के शारीरिक धरातल पर भी संभोग से पूर्व व्यक्ति बहुत कुछ बोलता है, पर संभोग की तृप्ति के बाद वह शांत हो जाता है । तो यह तो एक क्षणिक प्राप्ति की बात है, क्षणिक मिलन की बात है । जहां महा-मिलन हुआ हो, अनंत की प्राप्ति हुई हो वहां व्यक्ति क्या बात करेगा ? तभी तो कहा गया — "बड़े बेअसर हैं वे लोग जो बातों में बुलन्द हैं ; जो जान गये उसको उनकी ज़ुबानें बन्द हैं । "

हीरा पायो गांठ गठियायो , बारबार वाको क्यों खोले ? ओशो से कई लोग पूछते थे कि यह कैसे पक्का पता चलेगा कि ध्यान लग गया ? यह कैसे मालूम हो कि परमात्मा मिल गया ? उसके उत्तर में ओशो कहते थे कि क्या तुम्हें दर्द का अनुभव होता है तो आनंद का अनुभव न होगा ? जब हीरा मिल जाता है , तब कोई संदेह नहीं रहता । बार-बार खोलना और देखना तो तब पड़ता है , जब संदेह होता है । परन्तु यह अनुभव तो असंदिग्ध है । "परमात्मा का अनुभव संदेहातीत है । जब होता है , बस हो गया । फिर सारी दुनिया कहे कि नहीं हुआ तो भी कोई सवाल नहीं । सारी दुनिया कह दे कि ईश्वर नहीं है , तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता । जब तुम्हें अनुभव हो गया — बस यही प्रमाण है । परमात्मा का अनुभव सेल्फ-एविडेंट है , स्व-प्रमाण है । " 20

पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि कबीर ओशो के प्रिय कवि हैं । ओशो कबीर पर रस-विमुग्ध भाव से बोलते हुए कहते हैं : "कबीर बेमिसाल हैं । कबीर बेजोड़ हैं । कबीर बुद्ध से ज्यादा सफल हैं अनुभव की व्याख्या में , वेद से ज्यादा सफल हैं । वेदान्त और बुद्ध से बारीक बात उन्होंने कह दी है । .... कबीर क्रांति-दृष्टा हैं और वे बड़े खतरनाक प्रतीत होते हैं , क्योंकि सत्य को कहने की उनकी आकांक्षा इतनी प्रबल है कि बिना चिन्ता किये , बिना सोचे कि किन हितों को आंच आएगी , वे सीधी बात कह देते हैं । कबीर बड़े बेबूझ हैं — जंगल की तरह । कबीर को कोई भी न समझ पाएगा । क्योंकि कबीर स्वयं वेद हैं , लेकिन वेद के विपरीत बोलते हैं । कबीर स्वयं बुद्ध हैं , लेकिन कहते हैं : सुन्नि मरै । निर्गुन को मानने वाले को आपत्ति होगी कि यह कबीर राम की बकवास लगाए हुए है — कहता है : राम सनेही ना मरै । यह सगुण का उपासक मालूम होता है । कबीर से कोई राजी न होगा । बुद्धि राजी न होगी । कबीर के सामने हमारी बुद्धि क्षत-

विक्षत सिद्ध होती है, हमारे विचार नपुंसक सिद्ध होते हैं। {क्योंकि} परम अनुभव की यह कहानी ही ऐसी अकथ है कि बुद्धि से बेबूझ है। तो कैसे प्रत्यभिज्ञा हो ? ऐसी स्थिति में ही कबीर कहते हैं : झगरा एक निबेरहु राम। अर्थात् राम को उपलब्ध व्यक्ति ही — राम यानी दशरथ पुत्र राम ~~महर्षि~~ नहीं, बल्कि अस्तित्व का आत्यन्तिक शिखर, भगवत्ता की परम अवस्था —इस उलझन को सुलझा सकता है। ... हां, अगर तुम बुद्धि को छोड़ जाओगे तो कबीर में तुम्हें महाप्रकाश दिखाई पड़ेगा। .... और बड़ी सजगता से कबीर में प्रवेश करें, क्योंकि उनके सूत्र का एक-एक शब्द बहुमूल्य है। उपनिषद फीके पड़ जाते हैं कबीर के सामने। वेद दयनीय मालूम पड़ने लगता है। कबीर बहुत अनूठे हैं। बेपढ़े-लिखे हैं, लेकिन जीवन के अनुभव से उन्होंने कुछ सार पा लिया है। और चूंकि वे पंडित नहीं है, इसलिए सार की बात संक्षिप्त में कह दी है। उसमें विस्तार नहीं है। बीज की तरह उनके वचन हैं, बीज-मंत्र की भांति। " 21

"गूंगे केरी सरकरा" में कबीर-वाणी पर दश व्याख्यान संकलित हैं। ये दस व्याख्यान इस प्रकार हैं : 1. अकथ कहानी प्रेम की, 2. लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी की बात, 3. दुलहा दुलहिन मिल गए, फीकी पड़ी बरात, 4. सम्यक् जीवन : सम्यक् मृत्यु, 5. एक एक जिनि जानिया तिन ही सच पाया, 6. सतगुरु नूर तमाम, 7. जिन जागा तिन मानिक पाइया, 8. समर्पण है परम समाधान, 9. मृत्यु है द्वार अमृत का, 10. संन्यास परम सुहाग है।

"अकथ कहानी प्रेम की" में ओशो कबीर के प्रेम की व्याख्या करते हुए कहते हैं : " प्रेम का अर्थ है : भरोसा। प्रेम का अर्थ है : श्रद्धा। प्रेम का अर्थ है : स्वीकार। संदेह का अर्थ है : होश रखो, कोई

कोई लूट न ले ; बचाओ अपने को , सदा तत्पर रहो , आक्रमण होने को है कहीं न कहीं से , और इसके पहले कि आक्रमण हो तुम खुद आक्रमण कर दो , क्योंकि वही रक्षा का सबसे उचित उपाय है । तो प्रतिपल जैसे संतरी पहरे पर खड़ा हो , ऐसे हम बच्चों को तैयार करते हैं । तभी हम बच्चे को कहते हैं कि प्रौढ़ हुआ , जब उसकी प्रेम की क्षमता पूरी ह खो जाती है ; जब वह चारों तरफ शत्रु को देखने लगता है , मित्र उसे कहीं भी दिखायी नहीं पड़ता ; जब अपने बाप पर भी संदेह करता है — तभी हम समझ पाते हैं कि अब यह योग्य हुआ , दुनिया में जाने योग्य हुआ । अब बचपना न रहा । अब इसे कोई धोखा न दे सकेगा । अब यह दूसरों को धोखा देगा । .... कबीर ने कहा है कि तुम धोखा खा लेना , लेकिन धोखा मत देना ; क्योंकि धोखा खा लेने से कुछ भी नहीं खोता है । धोखा देने से सबकुछ खो जाता है । किस सबकुछ की बात करते हैं कबीर ? जैसे-जैसे तुम धोखा देते हो , वैसे-वैसे तुम्हारे प्रेम की क्षमता खो जाती है । कैसे तुम प्रेम करोगे , अगर तुम धोखा देते हो ? और अगर तुम डरे हुए हो , तो भय तो जहर है , प्रेम का फूल खिल न पाएगा । अगर तुम डरे हुए हो तो तुम प्रेम कैसे करोगे ? भय से कहीं प्रेम उपजा है ? भय से तो घृणा उपजती है । भय से तो शत्रुता उपजती है । भय से तो तुम अपनी सुरक्षा में लग जाते हो । " 22

"लिखालिखी की है नहीं , देखादेखी बात " वाले व्याख्यान में ओशो कबीर के दोहों की व्याख्या करते हुए कहते हैं :" कबीर कहते हैं : "आतम अनुभव ज्ञान की , जो कोई पूछे बात । सोगूंगा गुड़ खाइके , कहे कौन मुख स्वाद ।। " और बड़ी कठिनाई यह है कि जिसने जान लिया है , वह भी तुम्हें देना चाहे तो नहीं दे सकता । तुम्हें ज्ञानियों की पीड़ा का कोई भी पता नहीं ; तुम एक ही पीड़ा जानते हो — अज्ञानी की । ज्ञानी की पीड़ा यह है कि उसे पता

चल गया है , वह जानता है और तुम्हें देखता है भटकता हुआ और चाहता है कि तुम्हें सब दे दे , लेकिन कोई उपाय नहीं है । "सो गूंगा गुड़ खाइके , कहै कौन मुख स्वाद । " वह गूंगे की भांति हो गया है । " [23]

इसलिए कबीर कहते हैं कि ज्ञानी के सुख को या ज्ञानी की वेदना को केवल ज्ञानी ही पहचान सकता है । बुद्ध को पहचानने के लिए बुद्ध होना पड़ेगा , उसके अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं है । कृष्ण को समझना हो तो कृष्ण ही होना पड़े , उससे कम में काम नहीं चल सकता । लेकिन हम बड़ी जल्दी निर्णय ले लेते हैं । "हम अपनी घाटी में , अंधेरे में दबे , उन पहाड़ों के शिखरों के संबंध में निर्णय लेते हैं जिन तक हमारी आंखें ही नहीं पहुंचती हैं । यात्रा तो दूर , जिनकी झलक भी हमें नहीं मिलती — हम निर्णय ले लेते हैं । " [24]

"जिन जागा तिन मानिक पाइया" वाले व्याख्यान में एक स्थान पर ओशो कबीर के पद "अवधू ऐसा ज्ञान विचार " की सुन्दर व्याख्या करते हैं । कबीर के पद की पंक्ति है : " भेरे चढ़े सो अधधर डूबे , निराधार भए पार । " तथा "उपट चले सो नगरि पहुँचे , बाट चले ते लुटे " [25] कबीर समझ से , बुद्धि से ~~विपरीत~~ विपरीत बात करते हैं । जो राजमार्ग से चला वह लुट गया और जिसने उलटा मार्ग पकड़ लिया वह ~~पहुंच~~ पहुंच गया । कबीर कहते हैं जिसने सहारा लिया वह डूब गया और जो बेसहारा रहा वह पा हो गया । यहां कबीर एक बढ़िया बात कहते हैं कि जो समर्पित है उसे तुम डूबा नहीं सकते । समर्पण से बड़ा कोई करिश्मा नहीं है । भरोसा , सीमातीत भरोसा । कोई कहेगा — आखिर भरोसे की भी कोई सीमा होती है ? तो भरोसे की कोई सीमा नहीं होती । सीमावाला भरोसा भरोसा ही नहीं होता । यहां ओशो गुरजिएफ के एक प्रयोग का उदाहरण देते हैं

जिसमें गुरजिएफ अपने तीन शिष्यों को कहते हैं कि मैं जहां कहूं कि रुक जाओ, वहां तुम्हें रुक जाना है। एक बार वे एक नहर से गुजर रहे थे कि गुरजिएफ ने कहा "रुक जाओ" और वे तीनों बीच नहर रुक गये। उस समय तो पानी नहीं था, परंतु पानी छोड़ा जा रहा था। एक शिष्य तब तक खड़ा रहा जब तक गले तक पानी आ गया। दूसरे ने मुंह तक पानी आने दिया, परंतु तीसरा तो खड़ा ही रहा। गुरजिएफ अपने तंबू से भागा-भागा आया और उसे पानी से बाहर निकाला। बेहोश था, बामुश्किल होश में आया। परंतु आंखें खोलते ही उसने गुरु के पैर पकड़ लिये और कहा जो जानना था जान लिया, जो पाना था पा लिया। गुरजिएफ इसको "क्रिस्टलाइजेशन" कहता है। ऐसी घड़ी में जब तुम सब कुछ दांव पर लगा देते हो, कुछ भी नहीं बचाते, एक छलांग घटती है जो तुम्हें परिधि से केन्द्र में पहुंचा देती है। पहले दो शिष्यों का भरोसा नहीं था, वे बचने के लिए छलांग मारते हैं। तीसरे का भरोसा अटूट था, अनहद था, असीम था। प्रथम दो का समर्पण कच्चा था, तीसरे का समर्पण सच्चा था। जहां खतरा न हो, वहां समर्पण कैसा ? मुंह तक पानी आने में खतरा क्या था ? तुम चालाकी कर रहे हो, धोखा दे रहे हो, क्योंकि जहां से खतरा शुरू होता है, वहीं से आपका समर्पण शुरू होता है।[26] इसीको बिहारी के शब्दों में कहें तो — "अन बूडे बूडे, तिरे जे बूडे सब अंग"। यहां जो नहीं डूबे सो डूब गये, और जो डूबे उनका बेड़ा पार हो गया।

इसी बात को समझाने के लिए ओशो ने कृष्ण और रुक्मिणी का एक उदाहरण भी दिया है। कृष्ण भोजन छोड़कर दौड़े, देहरी तक गये और फिर लौट आये। रुक्मिणी ने इसका कारण पूछा। तो कृष्ण ने बताया कि मेरा एक भक्त संकट में था। लोग उसको पत्थरों से मार रहे थे, पर वह मेरी भक्ति में डूबा मुस्करा रहा

था , अतः मैं उसे बचाने भागा , पर देहरी तक गया कि देखा कि उसने पत्थर उठा लिया है । अब अपनी लड़ाई वह स्वयं लड़ रहा है । बड़ी रहस्यमयी कथा है यह ।[27] ओशो की विशेषता यह है कि वे ऐसे सटीक उदाहरण देते हैं कि बात सीधे हृदय में उतर जाती है । यह भविष्य तय करेगा कि आगे से कबीर का अध्यापन ओशो के बिना अधूरा रहेगा ।

"संन्यास परम सुहाग है " व्याख्यान में ओशो कबीर के नाना पदों की कुछ टेक पंक्तियों को लेकर चलते हैं । उनमें से एक है : "यह संसार सकल है मैला , राम कहैं ते सूचा । कहै कबीर नाव नहिं छांडौ गिरत परत चढ़ि ऊंचा ।। " यह सारा संसार अपवित्र है , क्योंकि मन से जन्मा है । मन कलह है और अपवित्रता है । केवल वे ही इस संसार में पवित्र हैं जिनके हृदय में राम का उच्चार है । सिर्फ उनका नाम न छोड़ना । गिरना-पड़ना , फिर उठ-उठ के खड़े हो जाना , पर नाम रूपी नाव को मत छोड़ना । इस सन्दर्भ में ओशो कहते हैं :

"जो गिरने से डरता है वह तो चलता ही नहीं है ; फिर भय के कारण बैठ जाता है । गिरने से मत डरना , भूल करने से मत डरना । एक ही बात का ख्याल रखना कि एक हो भूल दुबारा मत करना । एक ही ढंग से बार-बार मत गिरना , क्योंकि वह तो बेहोश आदमी का लक्षण है । गिरना हर बार ; नये ढंग से गिरना , फिर उठ जाना । गिरने-उठने में एक चीज समान रखना -- उसके नाम का स्मरण । वह अहर्निश गूंजता रहे । अंधेरे में रहो तो , रोशनी में रहो तो ; उठो तो , गिरो तो -- उसकी गूंज बनी रहे । वह एक धागा न छूटे हाथ से , बस । नाम की नाव न छूटे , फिर लहरें ऊपर ले जायें, नीचे ले जायें । 'गिरत-पड़त चढ़ि ऊंचा ' -- लेकिन गिरते-पड़ते एक दिन तुम उस ऊंचाई तक पहुंच जाओगे जहां पर परमात्मा है । "[28]

<u>सहजोबाई :</u>

सहजोबाई पर ओशो ने जो कहा है वह "बिन घन परत फुहार" नामक ग्रंथ में सुग्रथित हुआ है । इस वार्तामाला में दस मोती हैं : 1. रस बरसै मैं भीजूं , 2. बहना स्वधर्म में , 3. पांव पड़ै कित कै कितौ , 4. हरि संभाल तब लेह , 5. जो सोवै तो सुन्न में , 6. भक्त में भगवान का नर्तन , 7. पारस नाम अमोल है , 8. जलाना अंतर्प्रकाश को , 9. सदगुरु ने आँखें दयीं , 10. निस्चै कियो निहार ।

सुप्रसिद्ध कवयित्री प्रभा ठाकुर इसकी भूमिका में लिखती हैं : " सहजोबाई ज्ञान , प्रेम और भक्ति की मुक्त त्रिवेणी । बस , इसी त्रिवेणी में डूबकर जो महसूस किया उसे ही "जस का तस" शब्दों में ढालने की कोशिश कर रही हूं ।" बिन घन परत फुहार " को पढ़ते-पढ़ते लगता है जैसे प्रेम , करुणा और भक्ति की फुहारों से भीग गया है मन , ऐसे अनूठे स्वाद से भर गया है चित्त कि कुछ कहते नहीं बनता । " गूंगे के गुड़-सा " महसूस भर किया जा सकता है । .... कितनी अटूट आस्था , दृढ़ विश्वास , " गुरु ही भक्ति , गुरु ही मुक्ति" । भक्ति और प्रेम से रसी-बसी है सहजो , गुरुभक्ति में डूबी हुई आकंठ । ... ऐसा " सहजो " को जब पढ़ा , भर आया श्री रजनीश का भी अंतस् , महाभाव में अभिभूत होकर उन्होंने कहा , "सहजो के वचन तो महाकाव्य हैं ।" और फूट पड़ी उनकी अमृतवाणी , लाखों लोगों ने दर्शन किये " सहजो " के । तृप्त हुए , कृतार्थ हुए । स्त्री और पुरुष को जिस तरह व्याख्यायित किया है श्री रजनीश ने , प्रेम और भक्ति को जैसे उकेरा है , लगता है जैसे परदे हटते चले जा रहे हैं आंखों के आगे से । परदे अंधकार के , ज्ञान के , दुविधा के । झिलमिलाती हैं प्रकाश की असंख्य रश्मियां । .... सहजो न पंडित है न ज्ञानी , न दार्शनिक न विचारक , पर बात ऐसी गूढ़ कहती हैं कि बड़े-बड़े ज्ञानियों से व्याख्या करते न

बने । " हरि ने मोसूं आप छिपायौ , गुरु दीपक दै , ताहि दिखायौ । " .... सदियां बीत जाती हैं "सहजो " सरीखे नरगिस के फूल को वीराने में महकते , एकाकी । • 29

सहजोवाणी की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं : "बिन घन परत फुहार ? इसका मतलब हुआ संसार में कार्य और कारण की श्रृंखला चलती है — बादल होते हैं तो पानी बरसता है । पर भीतर एक परम लोक भी है , चैतन्य का । वहां बिना बादल के भी फुहार पड़ती है । वहां बिना कारण के भी कार्य घटित होता है । वहां अकारण भी घटनाएं घटती हैं । तो बाहर के जगत में तो हर चीज का कार्य-कारण है । भीतर के जगत में सबकुछ अकारण है । जिस दिन तुम अकारण में प्रवेश करोगे उसी दिन तुम परमात्मा में प्रवेश करोगे । •30

यही फरक काव्य और विज्ञान का भी है । बुद्धि और भावना का भी है । बुद्धि और विज्ञान कारण के बिना आगे एक कदम नहीं बढ़ सकते और काव्य और भावना में बुद्धि कई बार व्यवधान भी बनती है । काव्यशास्त्र में एक अलंकार होता है — काव्यलिंग । उसमें पहले कोई विधान किया जाता है और फिर उसका कारण बताया जाता है । परंतु काव्यशास्त्र में एक दूसरा अलंकार भी होता है — विभावना । जहां कारण के अभाव में कार्य होने का वर्णन किया जाता है , वहां यह अलंकार होता है ,[31] जैसे — "बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु कर्म करै विधि नाना " सहजोबाई से संबद्ध इस ग्रंथ का शीर्षक ही एक तरह से देखा जाये तो विभावना का अच्छा उदाहरण है ।

सहजो के विषय में ओशो कहते हैं : "बड़े अछूते प्रतीक सहजो ने लिए हैं । कुंवारे प्रतीक हैं । पिटे-पिटाये नहीं हैं । उसने अपने जानने से ही लिए होंगे । वह कोई कवि नहीं है , रहस्यवादिनी

है । वह कोई कविता नहीं कर रही है, वह स्वयं कविता है । शब्दों से उसे कुछ लेना नहीं है । वह जो मौन में और शून्य में जाना है, उसे शब्दों के सहारे थोड़ा तैरा देना है ताकि तुम तक पहुंच जाए । शब्द तो कागज की नाव है । उसमें उसने शून्य के अनुभव को रखकर भेजा है तुम तक । " 32

कवि और लेखक शब्द की साधना करते हैं । शब्द को ब्रह्म मानते हैं । वहां भाषा होती है, शिल्प होता है, रचाव होता है, पर आयास भी होता है । परंतु सिद्ध और ऋषि शब्दों के पार आते हैं । शब्द से अशब्द की ओर जाते हैं । वहां सबकुछ अनायास होता है, सहज होता है, फूटता है । सहजो में भी यही हुआ है ।

ओशो सहजो की बात करते हुए सहजोमय हो जाते हैं : "ये सहजो-बाई के वचन टकसाल से निकले हैं, बिलकुल सीधे-सीधे हैं । ये सहजो बाई कोई पंडित है नहीं, न ही कोई कवि है । वचन सीधे-सीधे हैं, कोई बहुत बड़ा आडंबर नहीं है । बात साफ-साफ, दो टूक कहती है — कुछ छिपाया नहीं है । और इस ढंग से कही है जिस ढंग से पहले किसीने नहीं कही थी । इसलिए उधारी का उपाय नहीं । जब भी परमात्मा किसी में उतरता है, हर बार नये ढंग से उतरता है । पुनरुक्ति परमात्मा को पसंद ही नहीं । सहजो बाई का एक-एक पद बिलकुल अनूठा है । पहले कभी नहीं था, बाद में फिर कभी नहीं हुआ । सहजोबाई आत्मोपलब्ध है, यह तुम आत्मोपलब्ध होओगे तो ही समझ पाओगे । जो व्यक्ति आत्मोपलब्ध है वह तत्क्षण पहचान लेगा कि कि कोई दूसरा आत्मोपलब्ध है या नहीं । इसमें जरा भी दिक्कत नहीं होती । इसमें कुछ करना नहीं पड़ता । यह पहचान किसी प्रयास से नहीं होती । यह पहचान, सहज प्रमाण होता है इसका, बस वह घटती है । " 33

सहजोबाई ने बड़े सुंदर और बारीक सूत्र दिए हैं और बिलकुल सरल भाषा में । वस्तुतः जहां दूसरा होता है वहां प्रतिस्पर्द्धा होती है । वहां महत्वाकांक्षा होती है । दूसरों के गले काटने को हम तत्पर हो जाते हैं, क्योंकि हम उनको दूसरा समझते हैं । सहजो का एक सूत्र है :

" निर्द्वन्दी निर्वैरता, सहजो अरु निर्वास "

इस सूत्र की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं :

"इसलिए मौन बड़ी गहरी कीमिया है । और जिसने मौन नहीं जाना, उसने कुछ भी नहीं जाना । मौन कहो, ध्यान कहो, प्रेम कहो, बात एक ही है । प्रेम में भी मनुष्य मौन हो जाता है, शब्द खो जाते हैं । शब्द खो जाते हैं, तो ध्यान हो जाता है । ध्यान से भर जाओ तो प्रेम बहने लगता है । ध्यान और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । ध्यान का अर्थ है : चुप हो गये । चुप हुए तो पाया कि एक ही है, दूसरा नहीं है । और जब पाया कि एक ही है, दूसरा नहीं है, तो प्रेम प्रवाहित होने लगा । दूसरा है, इसलिए प्रेम को रोके थे । जब तुमने पाया कि मैं ही हूं, सभी के हृदय में मैं ही धड़कता हूं, वृक्षों में मैं ही खिला हूं, चांद-तारों में मैं ही चमका हूं, फिर कैसा अप्रेम ? फिर कैसी घृणा ? फिर कैसा वैर-वैमनस्य ? ... तो सहजो कहती है :" निर्द्वन्दी निर्वैरता " । तो पहली तो बात है तुम निर्द्वन्द्व हो जाओ, दो न रहे । दो नहीं रहे तो निर्वैरता अपने-आप पैदा हो जायेगी, प्रेम जग जायेगा — फिर कोई शत्रु न रहा । कोई बचा ही नहीं शत्रु रहने को । शत्रु के लिए कम से कम कोई और तो चाहिए, कोई दूसरा चाहिए । इसलिए निर्वैरता का जैसा बारीक सूत्र सहजो ने दिया है, वैसा शायद ही किसी ने दिया हो । वह कहती है, पहले निर्द्वन्द्व हो जाओ, दो न रहे, द्वन्द्व न रहे, दुई न रहे ; फिर निर्वैरता तो अपने से

बहने लगती है । .... निर्द्वन्द्व से निकलती है निर्वैरता । और निर्वैर से निकलती है निर्वासना । यह बड़ा कीमती सूत्र है । जब दो न रहे तो अपने आप संघर्ष , शत्रुता गिर गयी : तुम निर्वैर हो गये । और जब दो ही न रहे तो पाने का क्या बचा ? तो वासना कैसे टिकेगी ? "[34]

इस ग्रंथ में एक जिज्ञासु प्रश्न करता है : " सहजोबाई का मार्ग है प्रेम , भक्ति , समर्पण , गुरुपूजा । फिर भी वह अन्तर्मुखता , अन्तर्यात्रा और वीतरागता पर जोर क्यों देने लगती है ? "[35]

इसके उत्तर में ओशो कहते हैं : " सहजोबाई का मार्ग है प्रेम , भक्ति, समर्पण , गुरु-पूजा ; फिर भी वह अन्तर्मुखता , अन्तर्यात्रा और वीतरागता पर क्यों जोर देने लगती है ? ... क्योंकि कोई विरोध नहीं है । अगर प्रेम परिपूर्ण होगा तो वीतराग हो ही जायेगा । वीतरागता अगर परिपूर्ण होगी , उससे प्रेम की अहर्निश धारा बहने ही लगेगी । क्या है वीतराग का अर्थ ? वीतराग का अर्थ है , जो राग से ऊपर उठ गया । और प्रेम का क्या अर्थ है ? जो काम से ऊपर उठ गया । तुम शब्दों के आरपार देखने में कब सफल हो पाओगे ? शब्द तुम्हारी आँखों में इतना क्यों अटका लेते हैं ? प्रेम का अर्थ है राग से मुक्ति । वीतराग का भी वही अर्थ है । वीतराग ध्यानियों का शब्द है ; और भक्ति प्रेमियों का शब्द है । बस इतनी ही झंझट है , और कोई झंझट नहीं है । अगर तुम महावीर से पूछोगे , वे कहेंगे वीतराग । अगर तुम मीरा से , सहजो से , दया से पूछोगे , चैतन्य से पूछोगे , वे कहेंगे — प्रेम, भक्ति । बस तुम अड़चन में पड़ जाओगे । ... समर्पण ? अन्तर्मुखता और समर्पण में भेद क्या है ? तुम जब स्वयं को समर्पण करते हो तो तुम किसे समर्पण करते हो , तुम्हें पता है ? जब तुम स्वयं को समर्पण करते हो तब तुम अपनी बहिर्मुखता को ही समर्पण करते हो , और क्या समर्पण करते हो ? और है क्या तुम्हारे पास देने को ?

अपने अहंकार को चरणों से उतारकर रख देते हो । फिर जो भीतर बच रहता है , वही तो अन्तर्मुखता है । बहिर्मुखी गया , वह तुमने छोड़ दिया , उसका तुमने त्याग कर दिया । फिर अन्तर्मुखता बचती है । वही तुxxx तुम्हारा शुद्ध अस्तित्व है । तुम पूछते हो गुरु-पूजा और अन्तर्यात्रा । गुरु बाहर है । मगर जो गुरु बाहर है , वह भीतर के गुरु तक पहुंचने की सीढ़ी मात्र है । " [36]

सहजोबाई कहती है : "चरनदास गुरु की दया , गयो सकल संदेह । छूटे वाद-विवाद सब , भयी सहज गति गेह ।। " सच्चा गुरु वह है जो मन के संदेह को भगा दे । जब तक संदेह है तब तक प्रभु नहीं । वाद-विवाद बुद्धि का लक्षण है । और बुद्धि से भक्ति नहीं होती । बुद्धि से प्रेम नहीं होता , बुद्धि से कविता नहीं होती , बुद्धि से एक फूल के सौन्दर्य को नहीं देखा जा सकता , बुद्धि से कल-कल करते झरने के निनाद में अस्तित्व का जो घोष है उसे नहीं सुना जा सकता । बुद्धि तो असहज बनाती है , असामान्य बना देती है और जहां असामान्य हुए अहंकार आया और जहां अहंकार आया अन्तर्मुखता गयी । बहिर्मुखता आयी । अतः उक्त पंक्तियों को समझाते हुए ओशो कहते हैं :

"सहज को खोजना । परमात्मा सहज में छिपा है । वह बिलकुल सहज है । पौधों , पक्षियों , पशुओं , चांद-तारों , पहाड़ों , झरनों जैसा सहज है । अगर तुम किसी सहज व्यक्ति को कहीं पा जाओ , तो उसका सत्संग मत छोड़ना । आभामंडल देखने की चिन्ता मत करना । न ही चमत्कारों की आकांक्षा करना ।

" चरनदास गुरु की दया , गयो सकल संदेह ।
छूटे वाद-विवाद सब , भयी सहज गति गेह ।।"

और सहज में गति हो गयी । तुम सहज हो जाओ , सुन्दर हो

जाओगे । तुम सहज हो जाओ , तुम सत्य हो जाओगे । सहज शब्द को तुम परमात्मा का पर्यायवाची शब्द समझो । तुम्हारी असहजता कट जाये , सब रोग कटा , सब जाल कटे , संसार कटा । जिस दिन तुम सहज होओ उस दिन तुम्हारे जीवन में वो अमृत की वर्षा हो जायेगी : " बिन घन परत फुहार , मगन भयो मनवा तहां दया निहार निहार । " बस तुम सहज हो जाओ , फिर देर नहीं है । इधर तुम सहज हुए , उधर " बिन दामिनी उजियार अति । " फिर बिजली भी नहीं चमकती और प्रकाश ही प्रकाश है । स्रोत-रहित प्रकाश है । कहीं से आता नहीं , सदा से है , ऐसा प्रकाश है । " बिन घन परत फुहार " -- आकाश में मेघ नहीं दिखाई पड़ते और वर्षा होती है । अमृत झरता है । क्योंकि वह अमृत इस अस्तित्व का स्वभाव है । " मगन भयो मनवा तहां " -- और तब तुम नाच उठते हो मगन होकर , क्योंकि कोई दुःख शेष नहीं रह गया । दुःख था तुम्हारे अंधेपन में , तुम्हारी असहजता में । गया । " 37

<u>मलूकदास :</u>

"कन थोरे कांकर घने " मलूक-वाणी पर ओशो के दस प्रवचनों का ग्रन्थ है । इसका संकलन-संपादन स्वामी योग चिन्मय ने किया है । इसमें निम्नलिखित दस व्याख्यान संग्रहीत हैं :

1. अलमस्त फकीरा , 2. क्रान्तिद्रष्टा संत , 3. परमात्मा को रिझाना है , 4. भक्ति की शराब , 5. प्रभु की अनुकम्पा , 6. जीवन्त अनुभूति , 7. मिटने की कला : प्रेम , 8. आध्यात्मिक पीड़ा , 9. उधार धर्म से मुक्ति , 10. अवधूत का अर्थ ।

उसके आमुख में लिखा गया है : " ये गीत मलूकदास के प्राणों की भेंट है । जो परमात्मा ने मलूकदास में दिया है , वह मलूकदास

तुम्हें दे रहे हैं । जो परमात्मा में पहुंचकर मलूकदास को मिला है, वह उनके शब्दों पर सवार होकर तुम तक पहुंच रहा है । भक्तों के तो सारे वचन गाये गये हैं । भक्ति तो प्रेम है ; प्रेम तो गीत है - प्रेम तो नाच है । भक्त नाचे हैं ; भक्त गुनगुनाये हैं । जब भगवान हृदय में उतरे, कैसे रुकोगे — बिना गुनगुनाये ? और करोगे क्या ? और करते बनेगा भी क्या ? विराट तुम्हारे आंगन में आ जायेगा, तो नाचोगे नहीं ? — नाचोगे ही । यह नैसर्गिक है ; स्वाभाविक है । रोओगे नहीं ? आनंद के आंसू न बहाओगे ? — आंसू बहेंगे ही ; रोके न रुकेंगे । इन कविताओं में, इन छोटे-छोटे पदों में मलूकदास के नाच हैं — मलूकदास के आंसू हैं ; मलूकदास के हृदय के भाव हैं । इनको तुम पंडित की तरह मत तौलना । इनको तुम — काव्यशास्त्री की तरह इनका विश्लेषण मत करना । ये विश्लेषण की पकड़ में न आयेंगे । इनको तो तुम पीना ; इनके साथ तो तुम भी गुनगुनाना और नाचना, तो ही पहचान होगी । " 38

मलूकदास में हमें भक्ति की सरलता और मस्ती मिलती है । भगत का भरोसा मिलता है, निश्चिंतता मिलती है । आलसियों का वह महामंत्र मलूकदास का ही है :

"पंछी करै न चाकरी, अजगर करै न काम ।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम ।। "

पर यह भक्ति की मस्ती में, भक्ति के नशे में कहा गया वचन है । इसमें वे सारी चिन्ता उस करतार पर छोड़ देने की बात करते हैं । कर्म करना है, पर कर्ता भाव से नहीं । कर्म करना है, पर बिना चिंता के । मलूकदास यह कहते हैं पंछी और अजगर को मिल जाता है तो तुम्हें क्यों नहीं मिलेगा ? मिलेगा ही । उस पर भरोसा रखो ।

इस मस्त मलूकदास के संबंध में ओशो कहते हैं : " बाबा मलूकदास —

यह नाम ही मेरी हृदय-वीणा को झंकृत ~~xxxx~~ कर जाता है, जैसे अचानक वसंत आ जाय। जैसे हजारों फूल अचानक झर जाय। नानक से मैं प्रभावित हूं, कबीर से चकित हूं, बाबा मलूकदास से मस्त। ऐसे शराब में डूबे हुए वचन किसी और दूसरे संत के नहीं है। नानक में धर्म का सार-सूत्र है, पर रूखा-सूखा। कबीर में अधर्म को चुनौती है — बड़ी क्रान्तिकारी, बड़ी विद्रोही। मलूकदास में धर्म की मस्ती है, धर्म का परमहंस रूप ; धर्म को जिसने पिया है, वह कैसा होगा। न तो धर्म के सार-तत्व को कहने की वह चिन्ता है, न अधर्म से ~~बहु~~ लड़ने का कोई आग्रह है। धर्म की शराब जिसने पी है उसके जीवन में कैसी मस्ती की तरंग होगी, उस तरंग से कैसे गीत फूट पड़ेंगे, उस तरंग से कैसे फूल झरेंगे, वैसे सरल अलमस्त फकीर का दिग्दर्शन होगा मलूक में। "[39]

मलूकदास की यह मस्ती, यह फकीराना अन्दाज, निश्चिंतता की पादशाही, भक्ति की शराब मलूकवाणी के दीवानों को मस्त कर देती है। हिन्दी में एक मुहावरा है, कोई विशिष्ट हो, अनूठा हो, स्पेशल हो तो कहते हैं — वह बड़ा मलूकजादा है। और मलूक मलूकजादा ही हैं। ओशो इन मलूकजादा के विषय में कहते हैं :

"मलूक वैसे सरोवर हैं ; तुम अगर झुके, तो तृप्त होकर उठोगे। तुम अगर राजी हुए और तुमने हृदय के द्वार खोले तो मलूक की तरंगें तुम्हें झंकृत कर जायेंगी ; तुम नाच उठोगे। उस नाच में ही रूपांतरण है। तुम्हारे भीतर भी गीत का आविर्भाव होगा और उस गीत के जन्म में ही परमात्मा है।

" शेख ने काबा, बरहमन ने दैर
दर-ऐ-मयखाना हमने ताका है"

मौलवी है, वह काबा की तरफ देख रहा है ; ब्राह्मण है, वह मंदिर की तरफ देख रहा है, काशी की तरफ देख रहा है। "दर-ऐ-

मयखाना " हमने ताका है " । लेकिन जो मस्त है, वह मधुशाला की तरफ देखता है । परमात्मा उनके लिए न काबा है, न काशी । परमात्मा उनके लिए मधुशाला है । मलूकदास पियक्कड़ हैं । उनके शब्द-शब्द में शराब है, उनके शब्द-शब्द में रस है ; अगर तुम डूबे तो उबर जाओगे । तो समझने की चेष्टा कम करना, पीने की चेष्टा ज्यादा करना । बुद्धि से संबंध मत जोड़ना । मलूकदास का बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है । सरल बालक की भाँति उनके वचन हैं । " 40

"परमात्मा को रिझाना है " नामक व्याख्यान में ओशो मलूकदास के एक वचन की व्याख्या करते हैं । वह वचन इस प्रकार है :

" ना वह रिझै जप-तप कीन्हैं, ना आतम के जारे ।
ना वह रिझै धोती टांगे, ना काया के पखारे ।। "

ओशो उसकी व्याख्या करते हुए समझाते हैं : " मलूकदास कह रहे हैं कि ऐसे जप-तप से कुछ भी न होगा । तप का अर्थ होता है -- तपाना : उपवास करना, धूप में खड़े होना, कि शीत में खड़े होना, कि कांटों पर लेट जाना । मलूकदास कहते हैं : यह भी क्या पागलपन है । तुम अपने को सताओगे, इस परमात्मा प्रसन्न होगा ? कौन मां अपने बेटे को भूखा देखकर प्रसन्न होती है ? कौन मां अपने बेटे को धूप में खड़ा देखकर प्रसन्न होती है ? कौन मां अपने बेटे को कांटों पर लेटा देखकर प्रसन्न होगी ? अगर ऐसी कोई मां होगी तो पागल होगी । तुम तपा-तपाकर परमात्मा को रिझाने चले हो ? तुम और दूर हुए जा रहे हो । और जितना ही कोई व्यक्ति तपस्वी बनता हैxx है, तपाता है अपने को, उतना ही अहंकार बढ़ता है : परमात्मा नहीं बढ़ता । उतनी अकड़ बढ़ती है -- कि देखो, मैंने इतने उपवास किये, इतने जप किये, इतने तप किये । देखो, कितना मैंने अपने को सताया । उसकी शिकायत और उसका दावा बढ़ता है । वह दावेदार बनता है । अगर परमात्मा इसे मिल जायेगा, तो

उसका हाथ पकड़ लेगा — कि बड़ी देर हुई जा रही है ; अन्याय हो रहा है । मैं कितने दिन से तपश्चर्या कर रहा हूं । आखिर कब तक ? मेरा मोक्ष और कितनी दूर है ? .... मलूकदास कहते हैं : न होगा जप से , न होगा तप से , क्योंकि परमात्मा यदि प्रेम है तो यह बात ही बेहूदी है कि तुम अपने को सताओगे , इससे उसे पा लोगे । और अगर तुमने अपने को सता-सता कर परमात्मा को अपने पास बुला भी लिया , तो क्या वह प्रसन्नता से आयेगा ? .... और×लोग× ना काया के पखारे । और लोग है कि काया को पखारने में लगे हैं । .... अगर परमात्मा को शुद्ध काया ही बनानी होती , तो सोने-चांदी की बना देता । लोहे की बना देता — कम से कम । गरीबों की लोहे की बना देता ; अमीरों की सोने-चांदी की बना देता । लेकिन मांस-मज्जा चमड़ी की बनाई । इसको शुद्ध करने से क्या होगा ? कैसे यह शुद्ध होगी ? नहीं ; इस तरह तुम सिर्फ उसका अपमान कर रहे हो । मलूकदास कहते हैं : यह सब अपमान है परमात्मा के । उसने काया जैसी बनाई , वैसी स्वीकार करो । उसकी ही दी हुई काया है । तुमने तो बनाई नहीं । स्वीकार करो । अहोभाव से स्वीकार करो ।

दया करै , धरम मन राखै , घर में रहै उदासी ।
अपना सा दुख सबका जानै , ताहि मिले अविनासी ।।

तो फिर कैसे उसे रिझायें ? कहते हैं मलूक — दया करै ... । उसके पाने का सूत्र एक ही है — दया , करुणा , प्रेम । चारों तरफ वही मौजूद है , तो जितना बन सके , उतनी दया करो । जितना बन सके उतना प्रेम करो । जितना बन सके , उतनी करुणा करो ।" 41

बाबा मलूकदास एक महाकवि है । मात्र कवि ही नहीं — एक द्रष्टा , एक ऋषि । कवि तो मात्र छन्द , मात्रा , भाषा बिठाना जानता है । कवि तो मात्र कविता का बाह्य रूप जानता है — ऋषि जानता है काव्य का अन्तस्थल , काव्य की अन्तरात्मा ।

साधारण कविता तो देह के समान होती है , उसमें प्राण नहीं होते । भक्तों की कविता सप्राण होती है । अतः ऐसा भी हो सकता है कि कुछ लोग भक्तों की रचना को कविता ही न मानें , क्योंकि देह के पुजारी आत्मा को कैसे पहचान सकते हैं ? तो प्रायः ऐसा होता है कि महाकवि तो कवियों में भी नहीं गिने जाते , और जिनको कवि कहना भी उचित नहीं वे महाकवि माने जाते हैं । हमारे हृदय सूख गये हैं इसलिए कई बार हम तुकबन्दियों को कविता मान लेते हैं । देवता से पहचान न होने के कारण कई बार झूठे देवता भी पूजे जाते हैं । अतः ओशो मलूकदास के संबंध में कहते हैं :

"मलूकदास की कविता में उनके भीतर के संगीत की धुन है । मलूकदास कविता करने को नहीं किये हैं । कविता बही है ; ऐसे ही जैसे जब आषाढ़ में मेघ घिर आते हैं , तो मोर नाचता है । यह मोर का नाचना किसीको दिखाने के लिए नहीं है । यह मोर सरकस का मोर नहीं है । यह मोर किसीकी माँग पर नहीं नाचता है । यह मोर किसी नाटक का हिस्सा नहीं है । जब मेघ घिर जाते , आषाढ़ के मेघ जब इसे पुकारते आकाश से , तब इसके पंख खुल जाते हैं , तब यह मदमस्त होकर नाचता है । आकाश से वर्षा होती ; नद-नाले भर जाते ; आपूर हो उठते ; बाढ़ आ जाती ; ऐसी ही बाढ़ आती है — हृदय में जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है । बाढ़ का अर्थ -- इतना आ जाता है हृदय में कि समाये नहीं सम्हलता ; ऊपर से बहना शुरू हो जाता है । तट-बन्ध टूट जाते हैं ; कूल-किनारे छूट जाते हैं । बाढ़ की नदी देखी है न ; भक्त वैसी ही बाढ़ की नदी है ; सन्त वैसी ही बाढ़ की नदी है । फिर बाढ़ की नदी करती क्या है -- इतनी भाग-दौड़ , इतना शोर-शराबा — जाकर सब सागर को समेट कर अर्पित कर देती है । ये मलूकदास के पद बाढ़ में उठे हुए पद हैं ; ये बाढ़ की तरंगें हैं ; और ये सब

परमात्मा के चरणों में समर्पित हैं । ये सब जाकर सागर में उलीच दिये गये हैं । "[42]

मीरांबाई :

कबीर, मलूक, सहजो की भांति ओशो ने मीरां पर भी काफी कुछ कहा है । मीरां पर उनके जो व्याख्यान हैं वे दो ग्रन्थों में संकलित हैं — "पद घुंघरू बांध" तथा "झुक आयी बदरिया सावन की" । यहां पर "पद घुंघरू बांध" के आधार पर ओशो ने जो मीरां के संबंध में कहा है उसे संक्षेप में कहने का उपक्रम है ।

उनके ये प्रवचन सन् 1977 में 1 अक्तूबर से 10 अक्तूबर तथा 11 नवम्बर से 20 नवम्बर तक [illegible] हुए थे । इसमें 20 अमृत प्रवचनों का संकलन है । इसका संकलन मा अमृत मुक्ति तथा मा योग प्रज्ञा ने किया था और संपादन स्वामी चैतन्य कीर्ति ने । इसकी प्रस्तावना हिन्दी के सुप्रसिद्ध गीतकार गोपालदास "नीरज" ने लिखी है ।

इस ग्रन्थ में जो प्रवचन संकलित हैं वे इस प्रकार हैं : 1. प्रेम की झील में नौका-विहार, 2. समाधि की अभिव्यक्तियां, 3. मैं तो गिरधर के घर जाऊं, 4. मृत्यु का वरण : अमृत का स्वाद, 5. पद घुंघरू बांध मीरां नाची रे, 6. श्रद्धा है द्वार प्रभु का, 7. मैंने राम रतन धन पायो, 8. दमन नहीं — ऊर्ध्वगमन, 9. राम-नाम रस पीजे मनुआ, 10. फूल खिलता है — अपनी निजता से, 11. भक्तिः एक विराट प्यास, 12. मनुष्य : अनखिला परमात्मा, 12. मीरा से पुकारना सीखो, 14. समन्वय नहीं — साधना करो, 15. हेरी ! मैं तो दरद दिवानी, 16. संन्यास है — दृष्टि का उपचार, 17. भक्ति का प्राण : प्रार्थना, 18. जीवन का रहस्य : मृत्यु में, 19. भक्ति : चाकर बनने की कला, 20. प्रेम धारा है आत्मा की ।

हिन्दी के प्रसिद्ध गीतकार नीरजजी ने इसकी भूमिका में लिखा है : "प्रस्तुत कृति "पद घुंघरू बांध" भगवान श्री द्वारा समय-समय पर मीरां के पदों पर दिए हुए प्रवचनों का संग्रह है। भगवान श्री के अनुसार यह प्रवचन, प्रवचन नहीं, मीरां के प्रेम की झील में नौका-विहार के लिए निमंत्रण पत्र है। यह प्रेम की झील बड़ी अद्भुत, बड़ी अनुपम है, क्योंकि यह झील पानी की नहीं, मीरां के आंसुओं का सरोवर है। इस सरोवर में जो निर्मलता है वह शायद गु गंगाजल में भी नहीं है। मीरां को समझना बड़ा कठिन है। काव्यशास्त्र की दृष्टि से अथवा तर्क और ज्ञान की दृष्टि से यदि आप मीरां को समझना चाहेंगे, तो चूक जायेंगे, क्योंकि मीरां न कविता है न शास्त्र। वह प्रेम-पीड़ा की एक अद्भुत अनुभूति है। मीरा शरीर नहीं है। मीरां के रूप में भक्ति शरीर धारण करके खड़ी हो गई है।" [43]

मीरा प्रेम की साकार प्रतिमा है। उसकी आंखों का एक-एक आंसू एक-एक छन्द है और एक-एक पद एक-एक खण्डकाव्य है। जैसे अपने गिरधर गोपाल तक पहुंचने के लिए मीरा लोक-लाज, मान-मर्यादा, कुल-कानि, घर-द्वार सबकुछ त्याग चुकी है, छोड़ चुकी है, उसी प्रकार जब तक ज्ञान के सारे सूत्र, तर्क के सारे छल, काव्य की सारी कलाएं न छोड़ दी जायेंगी, तब तक कोई मीरा के पास नहीं पहुंच सकता। मीरा मूर्तिमंत भाव है, अनुभूति है, प्रेम की पीर है, भक्ति की खीर है और उसे शब्दों से, तर्कों से, सीमाओं से नहीं छुआ जा सकता। मीरा के आंसुओं में प्रेम की पीर के, प्रेम की मस्ती के, उस सुरत के जितने रंग हैं उनको आंकने में न कोई तूलिका समर्थ है, न कोई काव्यशास्त्र। यह भी एक अजीब संयोग है, बात है कि ओशो के दृष्टि-मंडल में ऐसी ही मूर्तियां उभरती हैं जो सामाजिक दृष्टि से विद्रोही हैं, जिनको हदों के दायरों में नहीं बांधा जा सकता, जिनको

नियमों की श्रृंखलाओं में नहीं जकड़ा जा सकता , जिनको दुनियादारी की कारा में बन्द नहीं किया जा सकता । जो हवा और पानी के मानिंद हैं जिनको मुट्ठी में बन्द करने के प्रयत्न मात्र से वे उससे बाहर हो जायेंगे ।

"हर्दे न भायीं मुझे दुनियादारी की , मैं चाहता रंगे बहार , चाहता गमे बहार " यह बात मीरा पर सौ फी सदी ठीक बैठती है । प्रेम के रास्ते पर चलते-चलते मीरा जहां तक पहुंच गयी है वहां होश की दुनिया गायब है , दुनिया का विवेक गायब है । ज्ञान-ध्यान , जोग-भोग , जाति-पांति , पंथ-सम्प्रदाय , होश-हवाश इन सबको जो छोड़ आता है वही मीरा के मकाम तक पहुंच सकता है :

" वो न ज्ञानी , न वो ध्यानी , न बिरहमन न शेख ;
वे कोई और थे जो तेरे मकां तक पहुंचे । "

मीरा भी अपने गिरधर तक , अपने गोपाल तक इन जंजीरों को काटकर ही पहुंची है ।[44]

मोहन राकेश ने विगत अढ़ाई हजार के मानवता के इतिहास से केवल बारह व्यक्तित्वों को छांटकर "समय-सारथी" नामक एक पुस्तिका लिखी है उसमें विद्रोही आत्माओं शीर्षक के अन्तर्गत मीरा को भी लिया गया है । उसमें राकेश लिखते हैं : " जिस आस्था और धैर्य के साथ जोन आफ आर्क ने अपने को आग की लपटों के हवाले कर दिया था , उसी भावना से एक भारतीय नारी ने विष का प्याला होंठों से लगा लिया था । उसका नाम था मीरा । ... अन्य किसी भारतीय स्त्री ने अपने जीवन में उतना अपवाद नहीं सहा जितना मीरा ने , और किसीने शायद उतना बड़ा साहस भी नहीं किया । "[45]

हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार भगवतीशरण मिश्र ने भी मीरा के जीवन पर आधृत एक उपन्यास की रचना की है : "पीताम्बरा" ।

उस उपन्यास में मीरा के दादा राव दूदा एक स्थान पर कहते हैं : "बहुत चिंतन के पश्चात् मुझे एक नाम सूझा — मीरां । आप जानते हैं देवभाषा में मीरां का अर्थ जलाशय होता है । हमारी पुत्री भी किसी जलाशय के स्वच्छ स्फटिक से सलिल की तरह है । ... इसका मेल हमारे प्रिय नगर अथवा राज्य मेड़ता से भी पूरी तरह खाता है । मीरां + ता = मीरता होता है, अर्थात् जलाशय-युक्त । मीरता का अपभ्रंश रूप ही मेड़ता हो आया है । मेड़ता नगर के आसपास जलाशय ही जलाशय है । " [46] और सचमुच ही मीरा का जीवन-कवन एक एक जलाशय के समान रहा है ।

नीरजजी मीरा और ओशो के संदर्भ में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहते हैं : " मीरा को लोग गाते हैं, गुनगुनाते हैं, लेकिन बिरले ही उनके पदों की आत्मा तक पहुंच पाते हैं । भगवान श्री रजनीश ही एक अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने मीरा के अश्रु-सरोवर में गहरे तक डूबकर स्नान किया है । " [47]

"पग घुंघरू बांध मीरां नाची रे
मैं तो मेरे नारायण की आप ही हो गई दासी रे । "

यह पद इस ग्रंथ का बीज-पद है, सूत्र-पद है । इसकी व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं : " और जहां प्रेम है वहां समर्पण है । जहां प्रेम है वहां द्वैत नहीं । कोई तुम्हें दासी बनावे या दास बनावे तब तो बगावत हो सकती है, बगावत होती है, विद्रोह होता है ; लेकिन जब तुम प्रेम से खुद ही दास या दासी बन जाते हो, तब बात ही अनूठी होती है । इन दोनों में बड़ा फर्क है । इन दोनों में जमीन आसमान का फर्क है । पति समझाता है पत्नी को कि मैं परमात्मा हूं और तू मेरी दासी है । और पत्नी जानती है कि दास कौन है । (लेकिन) मीरा तो कहती है : "मैं तो मेरे नारायण की आपुहि हो गयी दासी रे" । नारायण ने

बनाया नहीं है मुझे दास ; मैं अपने आप हो गयी हूं । • 48

यह समर्पण-भाव है । यह अहंकार-त्याग है । अभिमान के ऊंट पर सवार व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता । क्योंकि प्रेम का मतलब है स्वेच्छा से दूसरे का दास होना , चाकर होना , बल्कि पुकारना कि म्हाने चाकर राखोजी । इसलिए तो पश्चिम के अस्तित्ववादी चिंतक प्रेम को भी नकारते हैं , क्योंकि उनके मतानुसार प्रेम व्यक्ति-स्वतंत्रता में बाधक है । परंतु ये सब तर्क बातें हैं , बुद्धि की बातें । हृदय से उसका क्या लेना-देना । यहां तो कृष्ण भी कहते हैं : हम तो चाकर राधा-रानी के । इसमें मधुरता है , शांति है , निश्चिंतता है , भरोसा है , सबकुछ उस पर छोड़ देना है । बस हमें तो वह काम करना है जो वह हमें सुझाता है ।

मीरां की इस दीवानगी पर ओशो कहते हैं : " मीरा के सामने लोग तो दूर हो गये हैं , अर्थहीन हो गये हैं , धुंधले हो गये हैं -- कृष्ण प्रगाढ़ होने लगे । और ये दोनों बातें एक साथ होती हैं । जैसे-जैसे प्रगाढ़ होता जाता है परमात्मा का अनुभव , वैसे-वैसे संसार माया होता जाता है । जैसे स्वप्न में किसीने कुछ कहा हो , ऐसी बात हो जाती है -- ' मीरा के प्रभु गिरधर नागर सहज मिले अविनासी रे ' ।

' न तो दुनिया ही बदलती है , न दुनियावाले
फैज जलवा से नजर अपनी बदल जाती है

संसार के अनुभव से न तो दुनिया बदलती है , न दुनियावाले , लेकिन उसके जलवे को देखकर अपनी नजर बदल जाती है । .... और मीरा कहती है : यह जो मिलन है प्रभु का , सहज हो जाता है । इसके लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ती । इसके लिए कोई जप-तप , व्यर्थ की परेशानियां नहीं उठानी पड़तीं । सहज का मतलब यह मत समझ लेना कि सरलता से हो जाती है ।

"सहज" का अर्थ सरल नहीं होता, "सहज" का अर्थ स्वाभाविक होता है। सहज का अर्थ है : यह तुम्हारा स्वभाव ही है कि तुम परमात्मा के साथ एक हो सकते हो। जब तक तुमने तय नहीं किया होता है, तब तक रुके हो ; जिस दिन तुमने ढील डाल दी, अपने अवरोध हटा दिये, द्वार-दरवाजे खोल दिये -- कि सहज हो जाते हो।" [49]

पर यह सहज होना ही बड़ा कठिन है। वस्तुतः हम स्वयं को अनेक आवरणों में, अनेक मुखौटों में, अनेक "सोसियल टैबूज में" छिपा लेते हैं। हमारी बुद्धि, हमारा ज्ञान, हमारा तर्क हमें रात-दिन असहज बनाने में लगा रहता है। बच्चा जब छोटा होता है, तब वह सहज होता है और जैसे-जैसे यह दुनियादारी का रंग उस पर चढ़ने लगता है वह असहज होता जाता है, परमात्मा से दूर होता जाता है। ओशो कहते हैं : " यह प्यारा वचन याद रखना। अगर मुझमें बेहोशी न होती, बेखुदी न होती ; अगर मैं अपने को भूलकर तल्लीन होने को क्षमतावान न होता, तो कभी का भटक गया होता। यह मेरी बेखुदी और बेहोशी ने मुझे बचाया -- " मेरे साथ होती न बेखुदी तो भटक गया होता मैं कहीं ; मेरी लगजिशों ने कदम कदम मुझे गुमराही से बचा लिया। भक्त कहता है : परमात्मा को पा लेना सहज है। परमात्मा खुद आता है। तुम पुकारो भर। तुम्हारी पुकार पूर्ण हो। तुम प्यासे भर हो जाओ। तुम्हारी प्यास भर समग्र हो।" [50]

परमात्मा को पाने के लिए मीरा की सहजता चाहिए, मीरा की ललक चाहिए, मीरा की तड़प चाहिए, मीरा की प्यास चाहिए, मीरा की पुकार चाहिए --

" प्रेम केवल प्रेम तुम्हें प्रभु समीप ले जायेगा
भूलना इतना नहीं कि मन मीरा का गांव है। "

मन को मीरा का धाम बना दो। ईश्वर दौड़ता हुआ आयेगा।

दयाबाई :

दयाबाई के वचनों पर ओशो के जो व्याख्यान हुए वे "जगत तरैया भोर की " नामक ग्रन्थ में संकलित है । उनके ये व्याख्यान सन् 1977 में 11 मार्च से 20 मार्च के दरमियान हुए थे । इसमें निम्नलिखित दस व्याख्यान हैं :

1. प्रभु की दिशा में पहला कदम , 2. संसार — एक अनिवार्य यात्रा , 3. पूर्ण प्यास एक निमंत्रण है , 4. भक्ति : प्रेम की निर्धूम ज्योतिशिखा , 5. यह जीवन एक सराय , 6. वादक , मैं हूं मुरली तेरी ; 7. धर्म है कछुआ बनने की कला , 8. करने से न करने की दशा , 9. महामिलन का द्वार — महामृत्यु , 10. मंदिर की सीढ़ियां : प्रेम , प्रार्थना , परमात्मा ।

"जगत तरैया भोर की " की भूमिका में ओशो दया की भक्ति के संदर्भ में बात करते हुए भक्ति की विभावना पर प्रकाश डालते हैं : "भक्ति की तरफ जाने में जो एक मात्र बाधा बनती है , वह xxxxx इतनी ही है कि तुम भयभीत हो कि मैं अपने नियंत्रण के बाहर हो जाऊंगा , अपना मालिक न रह जाऊंगा । परमात्मा को मालिक बनाना हो तो तुम अपने मालिक नहीं रह सकते । उसे xx "साहिब" बनाना हो तो तुम्हें अपनी "साहिबियत " छोड़ देनी पड़े । उसे मालिक बनाना हो तो तुम्हें सिंहासन से नीचे उतर आना पड़े । उतरो सिंहासन से । उतरते ही तुम पाओगे वह बैठा ही था । तुम्हारे बैठे होने की वजह से दिखाई नहीं पड़ता था । तुम उतरकर सिंहासन के सामने झुको और तुम पाओगे उसकी अपरंपार ज्योति , उसकी अनंत ज्योति , उसका प्रसाद तुम्हें सब तरफ से भर गया है । रामकृष्ण कहते थे — तुम नाहक की पतवारें से रहे हो । अरे , पाल खोलो । पतवारें रख दो । उसकी हवाएं बह रही हैं । वह

तुम्हारी नाव को उस पार ले जाएगा । भक्ति है पाल खोलना और ज्ञान है पतवार चलाना । पतवार में तो स्वभावतः तुम्हींको लगना पड़ेगा । पाल भगवान की हवाएं अपने में भर लेते हैं और नाव चल पड़ती है । तुम्हारे बिना कुछ किए चल पड़ती है । ... समर्पण -- और खोल दो पाल । अपना किया अब तक कुछ न हुआ । अब छोड़ो भरोसा अपने पर । अब उसके पैरों से चलो । अब उसकी आंखों से देखो । अब उसके ढंग से जियो । अब उसके हृदय मेंxधड़कनx से धड़को । ये दया के सूत्र अनूठे हैं । तुम्हारे जीवन में क्रान्ति ला सकते हैं । "जैसे किनका अनल को सघन बने दे जार " अगर इनका एक अंगारा भी तुम्हारे भीतर पड़ गया तो तुम्हारा अंधकार नष्ट हो सकता है । • 51

दयाबाई के वचनों पर बोलते हुए ओशो भाव-विभोर हो गा उठते हैं : "जब तक न स्वयं ही तार सजें कुछ गाने को , कुछ नयी xxxx तान सुरताल नया बन जाने को ; छेड़े कोई भी लाख बार पर तारों पर झनकार नहीं होगी । जब तक कि न मधु पी के दीवाना हो , मन में रह-रह कर कुछ उठता नहीं तराना हो , छेड़े कोई लाख बार पर भौंरों में गुंजार नहीं होगी । जब तक न स्वयं ही बेचैनी से उठे जाग , जब तक न स्वयं कुछ करने की लग जाए आग ; उकसाए कोई लाख बार मुर्दा दिल में ललकार नहीं होगी । जब तक न स्वयं ही तार सजें कुछ गाने को , कुछ नयी तान सुरताल नया बन जाने को ; छेड़े कोई भी लाख बार पर तारों पर झनकार नहीं होगी ।"•52

"प्रभु की दिशा में पहला कदम " नामक पहले व्याख्यान में दया पर बात करते हुए ओशो संत की परिभाषा देते हैं :

"संत का अर्थ है , प्रभु ने जिसके तार छेड़े । xxxx संतत्व का अर्थ है , जिसकी वीणा अब सूनी नहीं ; जिस पर प्रभु की अंगुलियां

पड़ीं । संत का अर्थ है , जिस गीत को गाने को पैदा हुआ था व्यक्ति वह गीत फूट पड़ा ; जिस सुगंध को लेकर आया था फूल , वह सुगंध हवाओं में उड़ चली । संतत्व का अर्थ है , हो गये तुम वही , जो तुम्हारी नियति थी । उस नियति की पूर्णता में परम आनंद है स्वभावतः । " [53]

"जगत तरैया भोर की , सहजो ठहरत नाहिं ।
जैसे मोती ओस की , पानी अंजुलि मांहि ।। "

दया के इस सूत्र की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं :

"जैसे सुबह का आखिरी तारा देर तक टिकता नहीं । जगत तरैया भोर की । बस सब तारे डूब गये , चांद डूबा , सब तारे डूबे , सूरज उगने के करीब आने को है , भोर होने लगी , आखिरी तारा टिमटिमाया -- टिमटिमाया कि गया । तुम ठीक से देख ही नहीं पाते कि अभी था और अभी नहीं हो गया । क्षण भर पहले था और क्षण भर बाद विलीन हो गया । जगत तरैया भोर की : ऐसा है संसार , सुबह के तारे जैसा । अभी है , अभी नहीं । इस पर बहुत भरोसा मत कर लेना । उसे खोजो जो सदा है , जो ध्रुव तारे की भांति है ; सुबह के भोर के तारे की तरह नहीं । जो अडिग है ; शाश्वत-सनातन है ; जो सदा था , सदा है , सदा रहेगा -- उसकी शरण गहो । क्योंकि उसकी शरण गह कर ही तुम मृत्यु के पार जा सकोगे । " [54]

संत दादू :

सन् 1975 में दिनांक 11-9-75 से 20-9-75 के दरमियान भगवान श्री रजनीश ने संत दादू पर दस प्रवचन दिये थे । उन प्रवचनों का सम्पादन मां अमृत साधना ने " सबै सयाने एक मत " के रूप में

ग्रन्थस्थ किया है । इसमें निम्नलिखित दस व्याख्यान संकलित हैं : 1. तुम बिन कहिं न समाहिं , 2. मेरे आगे मैं खड़ा , 3. प्रार्थना क्या है ? , 4. मृत्यु श्रेष्ठतम है , 5. समरथ सब विधि साइयां , 6. तथागत जीता है तथाता में , 7. इसक अलह का अंग , 8. प्रेम जीवन है , 9. भीतर के मल धोई , 10. नीति - कागज का फूल ।

इसकी भूमिका में लिखा गया है : " संत दादू दयाल की समस्त साधना , सारे पद एक शब्द में समाये जा सकते हैं । वह शब्द है -- समर्पण । इसी इकतारे की धुन पर उनकी साधना का संगीत गूंजता रहता है । ईश्वर की मृत्यु की छाया में पले आज के अहंकारी युग को दादू का असहाय समर्पण निरर्थक मालूम पड़ेगा । जहां सारा जीवन विजय और आक्रमण का अभियान मात्र हो गया है वहां दादू की -- ' तिल तिल का अपराधी तेरा , रती-रती का चोर ' -- ऐसी सीधी-सरल स्वीकृति , विकृति प्रतीत होगी । लेकिन अपने ही अहंकार के बोझ के नीचे दबे जा रहे मनुष्य को ऐसा समर्पण ही एक मात्र औषधि है । औषधि ही नहीं , संजीवनी भी है । " [55]

दादू-वाणी की व्याख्या करते हुए ओशो समर्पण और प्रेम , जो एक ही हैं , पर विशेष तवज्जो देते हैं :

"दादू का समर्पण उनके प्रेम-पौधे को लगा फूल है । वे प्रेम में इतने गहरे उतरे कि उनके हृदय के लिए सब प्रेम-पात्र छोटे पड़ गये । भक्ति में घुलते-घुलते भक्त का हृदय इतना सूक्ष्म और तरल होता जाता है कि उसके आंगन में आकाश उतर आता है । .... इसलिए अंत में एक ऐसा अजूबा घटता है : ' आसिक मासूक ह्वै गया , इसक कहावै सोई ; दादू उस मासूक का अल्लहि आसिक होइ । ' प्रेम एक ऐसा रसायन है कि जो उसके संस्पर्श में आ गया उसे बदलकर रहेगा । यह रूपांतरण इतना गहरा होता है कि प्रारंभ में जो प्रेमी था वह अंत

में प्रेयसी बन जाता है और उस प्रेयसी का फिर ख़ुद परमात्मा प्रेमी बनता है । ... प्रेम के साथ अनिवार्यतः जुड़ी है मृत्यु । प्रेम जीते जी मरने की कला का नाम है । इसलिए इस प्रेम-चर्चा में मृत्यु का भी उद्‌बोधन आवश्यक था । विशेषतः प्रश्नोत्तर प्रवचनों में भगवान श्री ने मृत्यु के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है । जब तक मृत्यु से हमारा सौहार्द्र निर्माण नहीं होता , तब तक प्रेम से भी हम अपरिचित ही रहेंगे क्योंकि प्रेम-गली मृत्यु के गलियारे से होकर ही जाती है । ... मृत्यु की अग्नि से गुजरा और निखरा प्रेम ही अंततः समाधि बन जाता है । वही दादू का लक्ष्य है । इसलिए उनका प्रेम प्रेमयोग बन जाता है । और प्रारंभ में दीन-हीन असहाय और दीवाने-से दिखनेवाले [illegible] दादू अंत में यह शक्तिशाली उद्‌घोष करते हैं कि :

"जे पहुँचे ते कहि गये , तिन की एकै बाति ।
सबै सयाने एक मति , उनकी एकै जाति ।। "

अब प्रेम तो बिलकुल ही प्रायोगिक और अनुभव करने की बात है । फिर भी भगवानश्री प्रेम के सूक्ष्म पहलुओं का साधकों के लिए प्रगटीकरण करते हैं क्योंकि हमने प्रेम की क्षमता ही खो दी है । और संत जिस प्रेम की बात करते हैं , उसकी तो परछायीं भी हम पर कभी पड़ी नहीं है । इसलिए यह विवेचन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है । शायद उस अज्ञात लोक की चर्चा सुनकर हम इसकी खोज में निकल पड़ें । " 56

दादू के वचनों का विवेचन करते हुए भगवान श्री रजनीश कहते हैं : "सबै सयाने एक मति , उनकी एकै जाति " जो भी सयाने हुए , जो जागे , जिन्होंने जीवन को जाना , उनका एक ही मत है , उनकी एक ही जाति है । महावीर , बुद्ध , कृष्ण और क्राइस्ट की एक ही जाति है । तुम्हारी जात हजार हैं । महावीर, बुद्ध , कृष्ण और क्राइस्ट , लाओत्से की बात एक है । तुम्हारे पंडितों

की बातें अनेक हैं । " 57

इसीको समझाते हुए ओशो कहते हैं : " पृथ्वी में दो तरह के लोग हैं । सयाने, प्रौढ़, जागे हुए ; और सोये हुए, अप्रौढ़ और बचकाने । सयाने और बचकाने ऐसी दो जातियां हैं दुनिया में +- बचकानों की हजार जातियां हैं — पंथ, सम्प्रदाय, मत, शास्त्र । सयानों का एक ही मत है, एक ही जाति है । क्योंकि एक ही वक्तव्य है उनका कि तुम मिटो तो परमात्मा हो जाये । तुम्हारा होना — प्रपंच, पाखंड । तुम्हारा मिटना — परमात्मा के आगमन के लिए द्वार । तुम खोओ ताकि परमात्मा मिल जाये । बूंद जब सागर में डूब जाती है तो सागर हो जाती है । " 58

" इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग ।
इसक अलह मौजूद है, इसक अलह का रंग ।। "

दादू के इस वचन की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं :

"तुम इश्क में रंग जाओ तो अल्लाह में रंग गये । तुम इश्कमय हो जाओ तो तुम अल्लाहमय हो गये । तुम्हारा मौजूद — तुम्हारा होने का ढंग ही प्रेमपूर्ण हो जाये — बस प्रार्थना हो गयी । फिर तुम परमात्मा को मानो न मानो कोई अंतर नहीं पड़ता । "59

इसीको आगे समझाते हुए वे कहते हैं :

"इसलिए मैंने कहा कि प्रेम से बड़ा शब्द मनुष्य की भाषा में दूसरा नहीं है । परमात्मा से भी बड़ा शब्द है प्रेम । क्योंकि परमात्मा के बिना तो तुम रह सकते हो, प्रेम के बिना नहीं । परमात्मा को इन्कार करके भी जी सकते हो, प्रेम को इन्कार किया कि सड़े, फिर नहीं जी सकते । यह वचन दादू का तुम्हारे लिए उपनिषद बन जाय । यह तुम्हारे हृदय पर खुद जाय । इसे तुम कभी-कभी गुनगुनाना, ताकि तुम्हारी हड्डी, मांस, मज्जा में समा जाय । " 60

<u>जगजीवनदास :</u>

"नाम सुमिर मन बावरे" [redacted] नामक ग्रन्थ में जगजीवन-वाणी पर दिये ओशो के व्याख्यान संकलित हैं । इसमें निम्नलिखित दस व्याख्यान हैं :

1. तुमसों मन लागा है मोरा , 2. कीचड़ में खिले कमल , 3. पंडित काहे करै पंडिताई , 4. धर्म एक क्रान्तिकारी उद्घोष है , 5. बौरे , जामा पहिरि न जाना , 6. जीवन सृजन का अवसर है , 7. नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा , 8. संन्यास परम भोग है , 9. तीरथ-ब्रत की तजि दै आसा , 10. प्रार्थना को गज़ल बनाओ ।

जगजीवन का जीवन प्रारंभ हुआ प्रकृति के साथ । कोयल के गीत सुने होंगे , पपीहे की पुकार सुनी होगी , चातक को टकटकी लगाये चांद को देखते देखा होगा । चमत्कार देखे होंगे कि वर्षा आती है और सूखी पड़ी हुई पहाड़ियां हरी हो जाती हैं । घास में फूल खिलते देखे होंगे । बैठे-बैठे झाड़ों के नीचे जगजीवन को गायों-बैलों को चराते , बांसुरी बजाते कुछ-कुछ रहस्य अनुभव होने लगा होगा । क्या है यह सब — यह विराट । इसलिए ओशो कहते हैं :

"मैं तुमसे कहता हूं ; मंदिर जाओ न जाओ , चलेगा ; लेकिन कभी वृक्षों के पास जरूर बैठना ; नदियों के पास जरूर बैठना ; सागर में उठती हुई उत्ताल तरंगों को जरूर देखना ; हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों के दर्शन जरूर करना । फूलों से दोस्ती बनाओ , वृक्षों से बातें करो । हवाओं में नाचो । वर्षा से नाता जोड़ो । और तुम सद्गुरु को खोज लोगे ।" 61

जगजीवन के शब्दों की —वचनों की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं : " दुनिया में दो तरह के लोग हैं बोलनेवाले । एक : जिनके

पास बोलने को कुछ नहीं है । वे कितने ही सुंदर शब्द जानते हों , उनके शब्द निष्प्राण होते हैं ; उनके शब्दों में सांस नहीं होती । उनके पास शब्द सुंदर होते हैं , जैसे कि लाश पड़ी हो किसी सुंदर स्त्री की , जैसे क्लिओपेत्रा मर गई है और उसकी लाश पड़ी है । उनके शब्द ऐसे ही होते हैं । असली बात तो उड़ गई । पिंजड़ा पड़ा रह गया है । पक्षी तो जा चुका ; या पक्षी कभी था ही नहीं । पंडित सुंदर-सुंदर शब्द बोलता है । उनके शब्दों में श्रृंगार होता है , कुशलता होती है , भाषा होती है , व्याकरण होता है । सब होता है , प्राण नहीं होते । बस एक ढांचा होता है , आत्मा नहीं होती । .... संत भी बोलते हैं , शायद शब्द ठीक-ठाक होते भी नहीं , व्याकरण का शायद पता भी नहीं होता । व्याकरण छूट जाती है , भाषा बिखर जाती है , लेकिन जो मधु बहता है , जो मदिरा बहती है , वह किसीको भी डूबो दे , सदा को डूबो दे । शब्द तो बोतलों जैसे हैं । बोतल सुंदर हो , पर भीतर शराब न हो तो क्या करोगे ? और बोतल कुरूप भी हुई और भीतर शराब हुई तो डूबो देगी ; तो मस्त कर देगी । तो तुम्हारे भीतर भी गीत पैदा होगा , नाच पैदा होगा । आत्मा पूर्ण हो । शब्द तो तुम्हारे भीतर की आत्मा को झंकृत करते हैं । • 62

जगजीवन जैसे बेपढ़े-लिखे संतों की वाणी में जो बल है , वह बल शब्दों का नहीं है , वह उनके भीतर के शून्य का बल है , उनकी आत्मा का बल है , उनके मौन का बल है । शब्दों की संपदा उनके पास नहीं होती है , केवल काम चलाऊ भाषा । पर इसी काम-चलाऊ भाषा में अमृत ढाला है । पंडितों के शब्द मूल्यवान होते हैं , लेकिन शब्दों को उघाड़ोगे तो भीतर कुछ नहीं मिलेगा । ऋषियों के शब्द मूल्यवान हों न हों , पर शब्दों को उघाड़ोगे

तो भीतर आत्मा की संपदा मिलेगी । एक घनीभूत प्रार्थना मिलेगी । एक विमुग्ध चैतन्य मिलेगा ।पंडित-कवि जो रचता है : सब सायास होता है , परिश्रम-साध्य ; संत और ऋषि जो रचते हैं , रचते भी नहीं , अपने आप रच जाता है , अनायास एक इन्द्रधनु उग आता है । वहां शब्दों का चमत्कार है , बाह्य सौन्दर्य है । यहां आत्मा का वैभव है , आत्मिक सौन्दर्य । साधन-संपत्ति पर रिझनेवाले रिझ जायेंगे वहां , पर जो आत्मा की वीणा के तारों को झंकृत करना चाहते हैं , उनको वहां निराशा ही मिलेगी । भक्तिकाल और रीति-काल के काव्य में जितना अंतर है , उतना ही अंतर पंडितों और संतों में है ।

जगजीवन के वचनों पर बात करते हुए ओशो कहते हैं : " एक नयी यात्रा पर निकलते हैं आज । बुद्ध का , कृष्ण का , क्राइस्ट का मार्ग तो राजपथ है । राजपथ का अपना सौन्दर्य है , अपनी सुविधा , अपनी सुरक्षा । सुंदरदास , दादू दयाल या अब जिस यात्रा पर हम चल रहे हैं — जगजीवन साहब — इनके रास्ते पगडंडियां हैं । पगडंडियों का अपना सौन्दर्य है । पहुंचाते तो राजपथ भी उसी शिखर पर है , जहां पगडंडियां पहुंचाती हैं । राजपथों पर भीड़ चलती है ; बहुत लोग चलते हैं — हजारों , लाखों , करोड़ों । पगडंडियों पर इक्के-दुक्के लोग चलते हैं । पगडंडियों के कष्ट भी है , चुनौतियां भी हैं । पगडंडियां छोटे-छोटे मार्ग हैं । पहाड़ की चढ़ाई करनी हो , दोनों तरह से हो सकती हैं । लेकिन जिसे पगडंडी पर चढ़ने का मजा आ गया वह राजपथ से बचेगा । अकेले होने का सौन्दर्य — वृक्षों के साथ , पक्षियों के साथ , चांद-तारों के साथ , झरनों के साथ । " 63

इसी क्रम में गाते-झूमते ओशो कहते हैं : "सद चाक हुआ गो xxxxxx जाम-ए-तन मजबूरी थी , सीना ही पड़ा ; मरने का वक्त मुकर्रर

था , मरने के लिए जीना ही पड़ा । " ---" मनुष्यों में भी अधिक मनुष्य ऐसे ही हैं , मरने के लिए ही जी रहे हैं । जैसे जीवन में कुछ और न हुआ है , न हो सकता है । जैसे जीवन एक लम्बी नीरस यात्रा है । जैसे जीवन एक मजबूरी है , एक असहाय अवस्था है ; किसी तरह गुजारना है , बोझ की तरह ढोना है । उदास , भारी-मन लोग अपनी-अपनी कब्र की तरह बढ़ रहे हैं --- जैसे बन्दी हों ; जैसे जंजीरों में ---बेड़ियों में बंधे हों । जैसे कोई उपाय ही न हो मृत्यु से मुक्त होने का ; जैसे उस परम जीवन जानने की कोई सुविधा ही न हो । "[64] और जगजीवन उसका सीधा-सरल रास्ता बताते हैं --- "नाम सुमिर मन बावरे " । पर इस नाम-स्मरण का संबंध साँसों से होना चाहिए । अपने समग्र अस्तित्व से होना चाहिए । मन और आत्मा की निर्द्वन्द्वता में होना चाहिए । तन-मन सब नाममय हो जाना चाहिए । वह कबीर ने कहा था ऐसा नहीं कि ---

"माला तो कर में फिरै , जीभ फिरै मुंह माँहि ।
मनवा तो दस दिसि फिरै , यह तो सुमिरन नाहिं ।। "

और सुमिरन का यह मार्ग हमें जगजीवन साहब बताते हैं ।

अन्य संतों की वाणी पर ओशो का चिंतन :

वस्तुतः ओशो ने संतों पर जो चिंतन किया है , केवल उतना ही लिया जाय , तो भी एक स्वतंत्र प्रबंध का विषय हो सकता है । अतः विस्तार-भय से यहां केवल उन ग्रन्थों का संकेत-भर देने का उपक्रम है । यहां उल्लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त कबीर पर उनके "कहै कबीर दीवाना" , "कहै कबीर मैं पूरा पाया " , "मगन भया रसि लागा" , "घूंघट के पट खोल " "आदि ग्रन्थ मिलते हैं । "न कानों सुना न आंखों देखा " में उन्होंने कबीर तथा फरीद उभय पर विचार किया है । मीरा पर "पद घुंघरू बांध " के अलावा "झुक आयी बदरिया सावन की " नामक एक ग्रन्थ और

भी है । इसी प्रकार दादू पर " पिव पिव लागी प्यास " नामक ग्रन्थ उपलब्ध होता है । नीचे अन्य संत-साहित्य पर ओशो के जो ग्रन्थ हैं उनका संक्षेप में ब्यौरा दिया जा रहा है :--

जगजीवन :

(1) नाम सुमिर मन बावरे

(2) अरी , मैं तो नाम के रंग छकी

पलटूदास :

(1) अजहूं चेत गंवार

(2) सपना यह संसार

(3) काहे होत अधीर

सुंदरदास :

(1) हरि बोलौ हरि बोल

(2) ज्योति से ज्योति जले

धरमदास :

(1) जस पनिहार धरे सिर गागर

(2) का सोवै दिन रैन

मलूकदास :

(1) कन थोरे कांकर घने

(2) रामदुआरे जो मरे

दरिया :

(1) कानों सुनी सो झूठ सब

(2) अमी झरत बिगसत कंवल

अन्य रहस्यदर्शी संत :

(1) नानक -- एक ओंकार सतनाम

(2) जगत तरैया भोर की -- दयाबाई

§3§ बिन घन परत फुहार — सहजोबाई

§4§ नहीं सांझ नहीं भोर — चरणदास

§5§ संतो , मगन भया मन मेरा — रज्जब

§6§ कहै वाजिद पुकार — वाजिद

§7§ मरौ है जोगी मरौ — गोरख

§8§ सहज-योग — सरहपा-तिलोपा

§9§ दरिया कहै सबद निरबाना — दरियादास §बिहारवाले§

§10§ प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया — दूलन

§11§ हंसा तो मोती चुगैं — लाल

§12§ गुरु परताप साध की संगति — भीखा

§13§ मन ही पूजा मन ही धूप — रैदास

§14§ झरत दसहुं दिस मोती — गुलाल

अभिप्राय यह कि सन्त-साहित्य पर ही ओशो का इतना विपुल साहित्य है कि उसके विभिन्न आयामों को लेकर कितने ही महा-निबंध लिखे जा सकते हैं ।

निष्कर्ष :

§x§x§x अध्याय के समग्रावलोकन से इतना कहा जा सकता है कि संत-साहित्य पर बात करते हुए ओशो समग्रतया उसमें लवलीन हो जाते हैं । उनका व्यक्तित्व संतों के व्यक्तित्व से अधिक मेल खाता है । सहज-साधना , ध्यान , सुमिरन , प्रेम , भक्ति , समर्पण प्रभृति विषयों में सन्तों की जो सहज मान्यताएं हैं उनसे ओशो के चिंतन का तादात्म्य हो जाता है । ओशो भी सन्तों की भांति सहज जन-साधारण की भाषा के पक्षधर हैं ।

===== xxxxxx ======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ द्रष्टव्य : चिन्तनिका : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 9 ।
§2§ ओशो-टाइम्स : वार्षिक अंक : 1997 : पृ. 65 ।
§3§ वही : पृ. 65-66 ।
§4§ वही : पृ. 66 ।
§5§ वही : पृ. 66 ।
§6§ उद्धृत : ओशो- टाइम्स से : वार्षिक अंक : 1997 : पृ. 67 ।
§7§ वही : पृ. 67 ।
§8§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 67 ।
§9§ मंगेश पाड्गांवकर : वही : पृ. 67 ।
§10§ द्रष्टव्य : सुनो भाई साधो : पृ. 4-33 ।
§11§ वही : पृ. 28-29 ।
§12§ वही : पृ. 78 ।
§13§ वही : पृ. 79 ।
§14§ वही : पृ. 149 ।
§15§ वही : पृ. 151 ।
§16§ वही : पृ. 152 ।
§17§ वही : पृ. 152-*§§§×155 ।
§18§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 260 ।
§19§ वही : पृ. 263 ।
§20§ वही : पृ. 269 ।
§21§ गूंगे केरी सरकरा : पृ. 5 ।
§22§ वही : पृ. 14-15 ।
§23§ वही : पृ. 44-45 ।
§24§ वही : पृ. 54 ।

§25§ प्र गूंगे केरी सरकरा : पृ. 171 ।

§26§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 177-179 ।

§27§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 179-180 ।

§28§ वही : पृ. 277 ।

§29§ बिन घन परत फुहार : भूमिका से ।

§30§ वही : फ्लैप से ।

§31§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 166 ।

§32§ बिन घन परत फुहार : फ्लैप से ।

§33§ वही : फ्लैप से ।

§34§ वही : पृ. 103 ।

§35§ वही : पृ. 127 ।

§36§ वही : पृ. 128 ।

§37§ वही : पृ. 219 ।

§38§ कन थोरे कांकर घने : आमुख से ।

§39§ वही : पृ. 14 ।

§40§ वही : पृ. 15 ।

§41§ वही : पृ. 95-97 ।

§42§ वही : पृ. 244 ।

§43§ पद घुंघरू बांध : भूमिका से : पृ. 5 ।

§44§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 6 ।

§45§ समय-सारथी : मोहन राकेश : पृ. 53 ।

§46§ पीतांबरा : डा. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 70 ।

§47§ पद घुंघरू बांध : पृ. 6 ।

§48§ वही : पृ. 147-148 ।

§49§ वही : पृ. 151 ।

§50§ वही : पृ. 152 ।

§51§ जगत तरैया भोर की : भूमिका से : पृ. 5-6 ।

(52) जगत तरैया भोर की : पृ. 4 ।

(53) वही : पृ. 4 ।

(54) वही : पृ. 13 ।

(55) सबै सयाने एक मत : भूमिका से ।

(56) वही : पृ. 6 ।

(57) वही : पृ. 285-286 ।

(58) वही : पृ. 286 ।

(59) वही : प्रथम फ्लेप से ।

(60) वही : द्वितीय फ्लेप से ।

(61) नाम सुमिर मन बावरे : पृ. 6 ।

(62) वही : पृ. 5-6 ।

(63) वही : पृ. 4 ।

(64) वही : पृ. 194 ।

===== XXXXXX =======